

स्वर्गीय भाई फूलदादर सुन्दरलाल देसाई
पदवीकेट 'अदमदायाद'

भूमिका

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्

1 जिम हिन्दू-जानिने अपने लोकोत्तर सस्कृति-मन्दिरकी आधार शिला भगवान् वेदकी रक्षामें अनन्त बलिदान दिए। वही जानि आज यदि स्वातन्त्र्य-मर्म चकनाचूर होकर अपनी वैदिक मय्यतिसे हाथ धो बैठ, तो हमसे बटकर और लज्जाकी बात क्या होगी? हाँ! यही मय्यति निम्नी जीनी-जागती जातिके अधिकारमें हाती, फिर उइ फूठी न ममाती और अवमर पारु। इमरी एक हा जनकारसे पिथका कोना-कोना मर टालती। पन्तु आर्य हृदयकी भावना और मूढ़ता पर ममार हैंमता हे। हमें उव हैंमोका मुँह चोड उत्तर अवश्य देना होगा और बता देना होगा कि “पुमान् पुमास परिशतु विदमत” (ऋ० ६।७-५१४) जैसे हमारे किंव धर्म शिक्षणके, बिना अपनाये मान्यताभिरक्षण अमम्भव है। वैदिक शातल शिक्षार्थी रक्षा प्रत्येक महदय मानवका मुख्य कर्तव्य है।

हमारे प्रात रमणीय श्रोत मुनियोंने अपने अनुकरणीय अनुसम आम-त्याग-पूर्वक आदर्श आचरणसे सुझा दिया ह कि वेद-रक्षाके प्रवान माधन हैं—वेद-मन्दिरों, वैदिक विद्यालयों और पुस्तकालयोंकी स्थापना, वैदिक अनुमधान एवं वैदिक ग्रन्थ-निमाणादि। युगिष्ठिरकी चारहरी शताब्दीमें वेद विद्या विशारद उदामान-प्रसर श्रुतिमिद्ध मुनिन अपने दुर्धर्ष परिश्रमसे बहुतसे वेद मन्दिर स्थापित किए थे। इतना ही नहीं निघण्टु जसे

* वेदमन्दिर-स्थापनाका प्रामाणिक इतिहास देखा “श्रीतमुनि-चरितामृत प्रवाह ५, तरण ७, पृ० ३०।

गम्भीर वैदिक ग्रन्थोंका निर्माण भी किया था × । दुर्भाग्यसे भारतमें एक भी वेद-मन्दिर न-बचा । यह अभाव हमारे श्रद्धेयचरण गुरु-वर वेद दर्शनाचार्य महामण्डलेश्वर स्वामी राङ्गेन्द्रानन्दजी महाराजको बहुत अखर रहा था । अवसर हाथ आते ही, इन्होंने अहमदाबादमें एक विशाल वेद-मन्दिर स्थापित कर दिया । वैदिक विद्वानोंको इससे महता प्रसन्नता हुई । पण्डित 'श्रीपाद दामोदर सातगलेसर' ने तो यहाँ तक कहा कि 'श्री स्वामीजीने भारतकी एक बड़ी कमी ही दूर नहीं की, बल्कि विश्वमें भारतीयोंका सिर उन्नत कर दिखाया ।

। महाराजजीने वैदिक प्रचारमें अपना तो पूर्ण जीवन अर्पित किया ही है; हम लोगों पर भी वही अनिवार्य व्रत-पालन रक्खा है ।

आपके सदुपदेशका ही फल है कि आज अहमदाबादके सत्संगियोंमें वैदिक साहित्यका विरसुत प्रेम जाग उठा है । विशेषतः प्रन्तर प्रतिभाशाली बक्रील भाई फलशङ्कर सुन्दरलाल देमाई (अहमदाबाद) महाराजजीके चरणोंमें अटूट भक्ति तथा श्रुत साहित्यमें अगाध श्रद्धा रखते थे । प्रायः नित्य ही वैदिक प्रकाशनका सङ्कल्प प्रकट किया करते थे । अपने सङ्कल्प सन्तुष्टि-पादपत्री अविरत सकलत्वाक लिए भाईने ता० ३-४-१९४५ ० में अपने एक मकान [म्यु० से० न० १९७७, १९७७/१, १९७७/१/१, १९७७/२, १९७७/३ मारगपुर अहमदाबाद] पर दृष्ट-कमेटी बनाते हुए लिखा कि—'वेद और दर्शन

सम्बन्धी पुस्तकोंके लिखाने तथा छपानेके कार्यमें कथित मकानका पूरा भाड़ा व्यय किया जाय'। तदनन्तर लिखा है कि— 'पुस्तक-लेखनादिका कार्य बड़ी व्यक्ति करेगा, जिसे परम-पूज्य ब्रह्मनिष्ठ वेददर्शनाचार्य सद्गुरु श्री १०८ महामण्डलेश्वर श्री योगेश्वरानन्दजी उस कार्यके लिए नियुक्त करेंगे। द्रष्ट-कमेटिकें मेघर ये हैं— (१) ठाकोरलाल चन्दुलाल ठाकोर (मुम्बई), (२) देसाई कृष्णलाल फूलशङ्कर (अहमदाबाद), (३) देसाई रामप्रसाद नन्दराम (अहमदाबाद) और चौथा मैं।

बहुत खेदसे कहना पड़ता है कि मई १९४९ ई० में माईका देहावसान हो गया। थोड़े दिनोंके बाद महाराजश्रीने माईके सङ्कल्पको पूरा करनेके लिए न्यायाचार्य, मीमांसातीर्थ, शास्त्री योगीन्द्रानन्दको लिखा कि वैदिक शिक्षाकी एक पुस्तक शीघ्र लिखकर तैयार कर लें। उन्होंने पत्र पाते ही कार्य आरम्भ कर दिया और हमारे माहिल्यमर्मज्ञ, वेद-विद्या-पारंगत पं० रामस्वरूपजी (सम्पादक सन्तसमाचार) की-अमुद्रित मात्रा-शाखाय" श्लोकबद्ध टीका पर "श्रुतिमंवादिनी" लिखकर तैयार कर ली। हरद्वार-कुम्भमें उक्त टीका-द्वय-सहित "मात्राशास्त्र" को महाराजश्री तथा और कई विद्वानोंने सुना। ममीने मुक्त कंठसे प्रशंसा की। महाराजश्रीकी आज्ञासे शास्त्री योगीन्द्रानन्द कुम्भका और आवश्यक सब काम छोड़कर उसे छपानेमें लग गये। माई फूलशङ्करने महाराजश्रीसे कहा था कि मेरे धनसे प्रथम पुस्तक आप अपने गुरु महागज (योगिराज श्री १०८ रामानन्दजी) के स्मरणमें प्रकाशित कराएँ। अतः उनके स्मरणमें "मात्रा शास्त्र" का प्रकाशन हुआ।

“महाराजश्रीने शास्त्री योगीन्द्रानन्दजी वैदिक एव दार्शनिक अनुसन्धानके लिए नियुक्त कर रक्खा है। उनका अनुसन्धाने बराबर चालू है। ‘सामयिक आवश्यकतानुसार’ “वेदमन्दिर-प्रवेशिका” नामकी पुस्तक प्रकाशित की जा रही है। “मात्रा शास्त्र” के साथ-ही-साथ इसका भी सम्पन्न होना रहा है। इसी प्रकार प्रतिवर्ष हिन्दी एव गुजरातीमें महत्त्वकी पुस्तकें प्रकाशित की जायेंगी।

पुस्तक-परिचय—प्रस्तुत पुस्तकके नामसे ही सूचित है कि वेदरूपी मन्दिरमें प्रवेश करानेका यह एक सरल पथ है। जानार छोटा होने पर भी यह अपने ध्येय साधनमें तितान्त-सफल है। इसमें चार (सोपान) प्रकरण है। “वेद गौरव” नामक प्रथम सोपानमें वेद-विद्याकी गरिमा और सर्वांगीणताका सुन्दर निरूपण है। “वैदिक रूपरेखा” मन्त्रक द्वितीय सोपानमें उपलब्ध वैदिक साहित्यके समग्र कलेसर पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। तृतीय “मन्त्र शिक्षा” सोपानमें सदिताओंके मार्मिक शिक्षाप्रद मन्त्रोंका, प्रामाणिक अर्थोंके साथ स्वल्प-संग्रह है। चतुर्थ “ब्राह्मण शिक्षा” सोपानमें ब्राह्मण वाक्योंका पूर्व-सोपान—जैसा सुन्दर संग्रह है। एक महान् कार्यमें व्याप्त शास्त्री योगीन्द्रानन्दका आनुषंगिक भी यह कार्य हिन्दी जगत्की एक अच्छी सेवा है। पूर्ण आशा है कि सर्गाय आत्माको अपने उभे स्थायी स्मारकमें सच्ची शांति मिलेगी।

वेदमन्दिर, अम्बाला द
आदिपत्र शु० १
सम्बन्ध २००७

म० म० स्वामी सूर्यान्-दजी
दर्शनरत्न, वेदालङ्कार,
व्याख्यान-वाचस्पति

आभार-प्रदर्शन

कुछ लिखना माल-से-माल कार्य है और कठिन-से-कठिन ।
 उच्च कक्षाके चिन्ताशील विद्वानोंके लिए माल-से-माल होगा । मुझे
 तो काफी सोचना पड़ता है; कहीं-कहीं काफीसे भी अधिक ।
 क्या अच्छा होता ! ! ! कि लेखनीसे जो एकवार निकल जाता;
 किसीके बापसे भी काटे न कटता । विन्तु मेरा लेख मुझे ही
 कई बार बुरी तरह काटना पड़ता है । कहीं ? विन्तु साहित्यात्मा
 भगवान् वेद और कहीं ? मैं । सत्य तो यह है कि परमहंस-
 परिव्राजकाचार्य, उदासीन-प्रवर, वेददर्शनाचार्य, महामण्डलेश्वर
 स्वा० गंगेश्वरानन्दजी महाराजके सत्परामर्शसे ही 'वेदमन्दिर-
 प्रवेशिका' बन सकी है । अतः आपका हृदयसे कृणी हूँ ।
 दर्शन-रत्न, वेदालङ्कार, व्याख्यान-वाचस्पति म० म० स्वामी
 सर्वानन्दजीका मैं कृतज्ञ हूँ; कि आपने भूमिका लिखनेमें अमूल्य
 समय दिया है । सबसे अधिक इस स्थानके अपने सुहृद्-
 चर महदय प्रबन्धकोंका आभारी हूँ; इन्होंने पूर्ण सुविधाएं मुझे
 दे रक्ती हैं । भाई 'पुरुषोत्तम, दलमुखराम' जीने मुद्रण-
 व्यवस्था एवं प्रूफ-करेक्शनमें तथा भाई 'अम्बालाल, निर्भयराम'
 मशरूखवालेने प्रूफके छाने-लेवानेमें बड़ी सहायता की है; इसलिए
 दोनों भाइयोंको मादीर्वाद धन्यवाद है । मैं उन वैदिक महारथियोंको
 अवश्य धन्यवाद दूंगा; जिनके लेखोंसे मैंने लाभ उठाया है ।

वेदमन्दिर, अहमदाबाद
 आश्विन शु० ३
 मम्बर २००७

श्रीतमुनि-चरण-रेणु
 योगीन्द्र



प्रथम सोपान (वेद-गौरव) पृ० १-३२

वेद-पर्याय शब्दोंका मर्म २-४; मनु-शब्दोंमें वेद ४-६; शिक्षादि वेदाङ्ग ७-१८; आपे पाठ-प्रणालीमें वेद १८-१९; जगदि विकार-अष्टक २०-२६; साम-अक्षर-गणना-पद्धति २७-२९; 'वेद' सङ्ग-रहस्य २९-३२ ।

द्वितीय सोपान (वैदिक रूप-रेखा) पृ० ३३-१०५

'वेद' शब्द और उसका अर्थ ३३; वेदोंके विभाग ३४; वेदोंके भेद और सम्प्रदाय ३७ ।

१. ऋग्वेद ४०-५४

नाम-करण ४०; ऋग्वेदकी शान्ताएँ ४१; ऋग्वेदके भाष्य ४५; ऋग्वेदके आरण्यक ४७; ऋग्वेदकी उपनिषद् ४९; ऋग्वेदके श्रौतसूत्र ५०; ऋग्वेदके श्रामण्य ५१; ऋग्वेदकी अनुक्रमिका ५२; बृहदेवता ५३-५४ ।

२. यजुर्वेद ५४-७३

यजुर्वेदका महत्त्व ५४; यजुर्वेदके भेद ५५ ।

छात्रा यजुर्वेदकी शाखाएँ ५७-६५

(१) तैत्तिरीय शाखा ५८-६०; (२) काठक शाखा ६०-६३; (३) मैत्रायणी शाखा ६३-६४; (४) कपिष्ठक शाखा ६४ ।

शुद्ध यजुर्वेदकी शाखाएँ ६५-७२

(१) माण्डूकिनी शाखा ६५-६९; (२) कथ शाखा ६९-७२; यजुर्वेदकी छुट शखाओंका कुछ सुद्ध अवगोप ७२-७३ ।

३. सामवेद

छात्र और साम ७३; ऋग्वेद और साम ७४; 'साम' शब्द और उसका अर्थ ७४; मान-महिता और उसके प्रकार ७५-८० ।

(१) छन्दः-संहिता ७६-७७; (२) गान-महिता ७८-७९; आठ विकार ८० ।

सामवेदकी शाखाएँ ८१-९३

(१) कौथुम-शाखा ८२-८६; (२) राणायनीय-शाखा ८६-८७; दोनों शाखाओंके ब्राह्मण ८७-८९; (३) जैमिनीय शाखा ९०-९१; सामवेदके सूत्र-ग्रन्थ ९१-९३ ।

४. अथर्ववेद ९४-१०३

‘अथर्ववेद’ और उसके पर्याय शब्द ९४-९८ ।

अथर्ववेदकी शाखाएँ ९८-१००

अथर्ववेदके उपवेद १००; अथर्ववेदके ब्राह्मण १०१; अथर्ववेदकी उपनिषदें १०१; अथर्ववेदके सूत्र-ग्रन्थ १०२; अथर्ववेदके परिशिष्ट १०३; उपलब्ध शाखा-साहित्य १०४-१०५ ।

तृतीय सोपान (मन्त्र-शिक्षा) पृ० १०६-१३०

(१) मन्त्रो गुरुः १०६; (२) स्वस्तिव्य-कामना १०६; (३) धृष्टा १०८; (४) ब्रह्मव्य-महिमा १०८; (५) ऋषोद्धार १०९; (६) संगठन ११०; (७) मधुर-जीवन ११२; (८) आदर्श जीवन ११६; (९) वृत्त-निन्दा ११६; (१०) उद्धारता ११८; (११) पापी केवल्यारी ११९; (१२) दिव्यरत्न-निर्माण १२०; (१३) गोमाता १२१; (१४) आत्म-शोधन १२४; (१५) उद्बोधन १२५; (१६) तन्त्र-दर्शन १२५ ।

चतुर्थ सोपान (ब्राह्मण-शिक्षा) पृ० १३१-१४९

(१) ब्रह्मव्य-वरिष्ठता १३१; (२) सत्य १३२; (३) ता १३२; (४) द-द-द १३४; (५) श्रेष्ठतम कर्तव्य १३५; (६) यज्ञ-मेद १३५; (७) यज्ञ-क्रम १३५; (८) वैष महायज्ञ १३५; (९) स्वाध्याय-महिमा १४०; (१०) उद्योग १४०; (११) श्राम प्रश्राम-गणना १४१; (१२) श्रम १४२; (१३) दम १४३; (१४) विजय-यय १४४; (१५) पगभ-पय १४५; (१६) स्त्री-प्रतिष्ठा १४६; (१७) अर्थ-ज्ञानकी दान्ष्टनीयता १४६; (१८) वेदान्तकी उपादेयता १४७; (१९) यज्ञ-वृक्ष-साद १४७; (२०) द्रष्ट-भान १४८; (२१) ऋषि-वन्दना १४९ ।

प्रेस-प्रमाद

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	११	भ्रति	श्रुति
३	१३	त्रिधव	त्रिधैव
"	२२	नोद्धत	नोद्धत
५	७	जगत्	जगत्
६	१५	उन्हों	उन्होंने
१६	७	इयादि	इयादि*
३९	७	वेदोंध	वेदोंध
४३	२	अनुवाक	अनुवाक
"	४	संहिताका	संहिताका
४५	७	प्रसिद्ध	प्रसिद्धि
४९	२	उपनिषदों	उपनिषदोंको
५४	१२	म्ह	म्ह
५५	१४	नहीं, अपितु अधिक ही है	X
६०	१०	श्रोत्र	श्रोत
६१	१७	सौत्रायणी	सौत्रामणी
"	"	पदकन्द	यदकन्द
६२	३	रोहितानुवन	रोहितानुवचन
७२	१७	सू—	सूत्र—
९७	२०	निमित्ते	निमित्तमें
१००	१४	गन्धव	गन्धर्व
१०३	१	शो	शत्रु
"	२	आत्	आन्
१०४	३	शालक	शाल
१०६	१५	अपमर्षण	अपमर्षण

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०७		शीपेक द्वितीय	तृतीय
१०८	१०	साय	सायं
११२	२२	परस्मै०	परस्मै०
११६	५	साय	सायं
११७	९	श्वश्र	श्वश्रू
११७	१८	भोग	भोगे
१२०	५	ब	ब
१२४	१९	जा	जो
१२५	१६	है	हैं
१२९	११	शील	शील
१२९	१८	ठीक	ठीक
१२९	२२	प्रादुभूत	प्रादुर्भूत
१३१	९	ब्रह्मचर्य	ब्रह्मचर्य
१३०	९	निमित्तापा	निमित्तोपा
१३०	९	ह	है
१३०	१३	आकाश	आकाश
१३१	१५	विश्वम	विश्वमें
१३१	११	मुशामित	मुशोमित
१३२	१८	वाणाका	वाणीका
१३३	२१	ऋषि	ऋषि
१३४	११	ब्रह्मचर्यादि	ब्रह्मचर्यादि
१३४	११	करने	करने
१३९	५	अग्निशोमो	अग्निशोमो
१३९	२४	स्यादौखं	स्यादौखं
१४०	२	तथैतं	तथैतं
१४१	१३	श्रुके	श्रुके



श्रीतवंशसमुद्भूतः, श्रीतमार्गस्य रक्षकः ।
भक्तिपित्तिसमुच्चयेता, श्रीचन्द्रः पातु नः सदा ॥



वेदमन्दिर - प्रवेशिका

प्रथम सोपान

वेद गौरवं

उदासीनं सुखासीनं, मुपासीनं रमारमम् ।
 औदास्यप्रथमाचार्यं, कुमार वैधसं भजे ॥१॥
 श्रौतवंशसमुद्भूतं, श्रौतमार्गस्य रक्षकः ।
 भक्तिवित्तिसमुच्चेता, श्रीचन्द्रः पातु नः सदा ॥२॥

वैदिक ज्ञान-गमिमा पर हिन्दू जातिका तो अविचल धर्मा
 है ही, आजका कल्पना-कुदाल प्रगतिगील मानव भी मुग्ध हो
 चला है । इस दिव्य सन्देश और मौलिक विचार प्रवर्तक
 वेदके संक्षरणमें हिन्दुओंके बलिदान ऐतिहासिकोंसे छिपे नहीं ।
 वेदों पर आँच आते देख राजकुमारियोंके कोमल हृदय काँप
 उठे । 'को वेदानुद्धरिष्यति' की विभीषिकाने मूर्छित कर
 दिया । कुमारिल जैसे विकलाङ्ग वैदिक सिंह जगो और

१ कुमारिलमन्त्रेण, हतं जिनहस्तिपु ।

निप्रत्यूहमवधन्त, धृतिशाखा समन्ततः । (कस्वचिप्राचीनकवे)

नास्तिक दिग्गजों पर टूट पड़े-। उनकी वेद-गर्जनासे दिशाएँ गूँज उठी। “ वेदा विच्छिद्य वीथीषु शिक्षिष्यन्ते ” के पाशविक अत्याचारोंसे वेद-उपासकोंका खून उबला। शूर शिव, वीर प्रताप और नर-नर वन्द्याकी तलवारोंने नर-पिशाचोंका खून खून पिया। अधिक क्या? हिन्दुओं को प्राणोंसे भी अधिक अपन वेद प्यारे हैं। इनकी महत्ता उनके रोम-रोममें रमी है।

सर्व प्रथम सुन्दर, मधुर, मुषध, मुषोव और संक्षिप्त

‘वेद’ संज्ञा ही चित्त आकृष्ट किए बिना
संज्ञा-सौष्ठव नहीं रहता। ‘द्व्यक्षरं चतुर्क्षरं’^२ की मर्यादाका दायित्वपूर्ण निर्वहन देखते ही

बनता है। केवल ‘वेद’^३ नाम ही नहीं, सभी ‘अति’ आदि पर्याय शब्द एक एक सैद्धान्तिक महत्ता व्यक्त कर रहे हैं। जिसका यहाँ दिग्दर्शन कराना अनुचित न होगा।

‘श्रुति’—कर्म कुहर-परम्परामें बहती आई है यह वैदिक अमर धारा^४। अतः इसका अपरेख्यत्वावेदी नाम ‘श्रुति’ पड़ा। ‘अनुश्रव’ समाख्याका भी यही रहस्य है—“गुरु-पाठादनुश्रूयत इत्यनुश्रवो वेदः” (वाचस्पति)^५

२. महाभाष्य १।१।१ प्रयोजनार्थम्

३. ‘वेद’ शब्दका अर्थ द्वितीय श्लोपानके आरम्भमें देखो।

४. “वेदस्याध्ययनं सर्वं, गुर्वध्ययनं पूर्वकम्।

वेदाध्ययनसामान्यादधुनाऽध्ययनं यथा॥” (श्री-वा-वाक्याविकरणे)

(१।१५ सं० त० कोमु० का० २।

१. 'आम्नाय'— 'आम्नाय' शब्द 'आम्नाय' से 'धातुसे' निपन्न 'आम्नाय' शब्द "धाता वथा पूर्वमकल्पयत्" (न० १०।१९०।३) का अम्नाय सिद्धान्त अपना कर अपने वाच्य वेदकी नित्यता बता रहा है। 'समाम्नाय' शब्द भी ऐसा ही है— "आम्नायसमा-म्नायशब्दयोर्वेद एव प्रसिद्धेः" (नागेशः)

त्रयी— गद्य, पद्य और गौनिमय मन्त्र-समुदायका नाम त्रयी है। चारों वेदोंका समस्त काव्य तीन प्रकारका ही है। अतः वेदचतुष्टयीको 'त्रयी' नामसे भी पुकारते हैं। पङ्गुल-शायने लिखा है—

विनियोक्तव्य रूपश्च, त्रिविधः सम्प्रदर्श्यते ।

ऋग्यजु सामरूपेण, मन्त्रो वेदचतुष्टये ॥

ऋकपादबद्धा गीतं तु, साम गद्य यजुर्मन्त्र ।

चतुर्ध्वपि वेदेषु, त्रिविधं विनियुज्यते ॥ (सर्गानु० वृत्ति)*

छन्द — सर्व विध कामनाओंका पूरा वेद अपने उपासकको इस तरह छपता है कि मृत्यु कभी हुई नहीं सकती— "देवा ये मृत्योर्विभ्यतस्त्रया विद्या प्राविशंस्ते छन्दोभिरच्छादयंस्तच्छन्दसा छन्दस्त्वम्" मन्त्रब्रा० (३।४।२)

स्वाध्याय— स्व+अध्याय, कुलपरम्परागत वेद ही (सु+आ+अध्याय) विधिपूर्वक अध्ययनीय है— "स्वाध्यायोऽध्येतव्यः" (तै. आ २।१५।७)

१. लघुशब्दोन्मुखेसरे 'इतिमाहेक्षणीन्यम्य' पालनिघ्न

* निदक्षतापनादत ५० १५१

आगम तथा निगम—श्रोत्रोंमें आगमका आना, मुखसे निगमका निकलना — भारतीयोंकी इस आदान प्रदानात्मक स्वाध्याय प्रवचनकी पवित्र अविगल शृंखलाके अन्त्योत्तर 'आगम' और 'निगम' नाम हैं । आगम आस्तिकमूर्धन्य बुभागिका सर्वस्व है — "आगमप्रणशचाहम्" (श्लो० वा० उपक्रम० ७) निगम महर्षि व्यासका कल्पद्रुम है — "निगमकल्पतरो गलित फलम्" (भा० १।१।३)

मनु-शब्दोंमें वेद

वैदिक महत्तासे परिचित मनु हृदयके उद्गारोंको सुनकर निश्चय हो जाता है कि वेद जैसी रिम्पल, रिशाउ, गुरु और गम्भीर दृढगी वस्तु रिदममें न हुई है और न होगी —

वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं, यथाकालमतन्द्रित ।

तं ह्यस्याहःपरं धर्मं, सुपधर्मोऽन्य उच्यते ॥ (मनु० ४।१४७)

आलस्य उंदर यथा समय वेदका नित्य अभ्यास करना चाहिए ।

क्योंकि यही मुख्य धर्म है और दूसरे धर्म गौण हैं ।

पितृदेवमनुष्याणां, वेदश्चक्षुः सनातनम् ।

अशक्यं चाप्रमेयं च, वेदशास्त्रमिति स्थितिः ॥ (१२।९४)

पितर, देव तथा मनुष्योंका वेद ही एक सनातन पथ-प्रदर्शक है ।

वेदकी गम्भीरताका पता लगाना मानव शक्तिके सर्वथा ब्यहर है ।

यह वास्तविक स्थिति है कि किसी पुरणसे वेद रचा नहीं गया; अपौरुषेय है ।

चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोका, श्चत्वारश्चाश्रमः पृथक् ।

भूतं भव्यं भविष्यं च, सर्वं वेदात्प्रसिद्धयति ॥ (११।९७)

ब्राह्मणादि चारों वर्ण, तीनों लोक, चारों आश्रम, भूत, भविष्य और वर्तमान सबका प्रकाश वेदसे ही है ।

शब्दः स्पर्शश्च रूपं च, रसो गन्धश्च पञ्चमः ।

वेदादेव प्रसूयन्ते, प्रसूतिर्गुणकर्मतः ॥ (१२।९८)

। त्रिगुण-त्मक मायासे — जगत्कारण शब्दादि तन्मात्राओंकी सृष्टि भूरादि वेद-शब्दपूर्वक ही होती है ।

त्रिभर्ति सर्वभूतानि, वेदशास्त्रं सनातनम् ।

तस्मादेतत्परं मन्ये, यज्जन्तोरस्य साधनम् ॥ (१२।९९)

वेदशास्त्र नित्य सर्व प्राणियोंका धारण पोषण करता है । जैसा कि ब्राह्मणमें कहा है — “हविरग्नौ हूयते सोऽग्निरादित्यमुपसर्पति तत्सूर्यो रश्मिभिर्नर्पति-तेनान्नं भवति । -अथेह भूतानामुत्पत्तिः स्थितिश्चेति हविर्जायते” अर्थात् वेदकी ही आज्ञासे आदुति अग्निमें पड़ती है । उदीप्त अग्निदेव अन्तर्गृह्य और शुके देवता विद्युत् तथा सूर्यसे सम्बन्ध स्थापित करता है । जिसे सूर्यरश्मियां जल खींचती हैं और विद्युत्की सहायतासे वर्षा होती है । वर्षासे अन्न, अन्नसे प्राणियोंकी उत्पत्ति स्थिति होनी है । वेदकी ही यह सब महिमा है । । अतः वेदको मैं सर्वोपरि मानता हूँ । जीवोंके पाम पुण्यार्थका साधन वेद ही है ।

सैनापत्यं च राज्यं च, दण्डनेतृत्वमेव च ।

सर्वलोकाधिपत्यं च, वेदशास्त्रविदर्हति ॥ (१२।१००)

सैन्य-सञ्चालन, प्रजा-पालन, दण्ड-निर्माण और सर्वलोकविपत्य यदि कोई कर सकता है तो एक वेद-शास्त्रवेत्ता ही कर सकता है।

सर्वाङ्गीण वेद

सर्वाङ्गीण नितर्ग सुन्दर वेदकी सज्जत सेवाके लिए सम्प्रशब्दजगतकी छायायित देख, शिक्षादि पहले ही योग्य स्थान रोक चुके हैं—

छन्दः पादौ तु वेदस्य, हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते ।

ज्योतिषामयनं चक्षुः, निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते ॥

शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य, मुखं व्याकरणं स्मृतम् ।

तस्मात्साङ्गमधीत्येवं, ब्रह्मलोके महीयते ॥

(पा. शिक्षा ८१, ८२)

वस्तुतः शिक्षादिका जन्म इसीलिए था । वे अपने उद्देश्य-साधनमें पूर्णतया सफल हैं—

“साक्षात्कृतवर्माणं रूपं यो बभूवुस्तेऽवरेभ्योऽ-
साक्षात्कृतवर्मभ्य उपदेशेन मन्त्रान् सम्प्रदुः । उपदेशाय
ग्लायन्तोऽवरे विलम्बहणाद्येन ग्रन्थं समाम्रासिपुर्वेदं वेदाङ्गानि च”

(निर० १।६।९) अर्थात् पहले ऋषि मन्त्र-दृष्टा थे । उन्होंने

अपने परवर्ती मन्त्र-दर्शन-सामर्थ्य-हित व्यक्तियोंको मन्त्रोंका उपदेश

किया । जय मनुष्योंकी उपदेश-ग्रहण-शक्ति भी क्षीण हो चली तब

(विलम्बहणाय) वैदिक गृह्य-ज्ञानके लिए वेदाङ्गोंकी रचना हुई ।

इन अङ्गोंका स्वल्प परिचय देना नितान्त आवश्यक है । अतः

मुण्डकोपनिषद्-श्रुत क्रमानुसार दिग्दर्शन कराया जाता है—

१. “शिक्षा, कर्मा, घ्राणं, निरुक्तं, छन्दो ज्योतिषमिति”

(मुण्ड० उ० १।१।१)

१. शिक्षा—वर्ण, स्वरादिके उच्चारण-प्रकार-प्रतिपादक ग्रन्थ, शिक्षा कहलाते हैं। विभिन्न शाखा सम्बन्धी शिक्षा ग्रन्थ बहुत हैं। निरुक्तालोचनमें वेदविच्चूडामणि सत्यवत सामश्रमीने अपनी देखी तीस शिक्षाओंका उल्लेख किया है :— (१) याज्ञ-चल्क्य शिक्षा, (२) कात्यायनी शि०, (३) वासिष्ठी शि०, (४) पाराशरी शि०, (५) माण्डूक्य शि०, (६) अमोयानन्दिन शि०, (७) छत्रमोयानन्दिनो शि०, (८) माध्यन्दिनीय शि०, (९) शुभ्रमाध्यन्दिनीय शि०, (१०) अमेशो शि०, (११) कैशवी शि०, (१२) स्वराडुश शि०, (१३) षोडशश्लोकी शि०, (१४) अवमाननिर्णय शि०, (१५) स्वरभक्ति-क्षण शि०, (१६) क्रमसन्धान शि०, (१७) गल्दक् शि०, (१८) म्ल स्वार शि०, (१९) प्रातिशाख्यप्रदीप शि०, (२०) वेदसूत्रपरिभाषा शि०, (२१) यजुर्विधान शि०, (२२) स्वरात्क शि०, (२३) क्रम-कारिका शि०, (२४) पाणिनीय शि०, (२५) नारदीय शि०, (२६) गौतमी शि०, (२७) लोमशी शि०, (२८) माण्डूकी शि०, (२९) शौनकी शि०, (३०) आथर्वण शि० ।

एक शिक्षा स्वामी दयानन्द सरस्वती कृत व्याख्या सहित छपी है। जिसे पाणिनिमुनि—प्रणीत लिखा गया है। परन्तु उमरावसिंह^२ शीर्षक अपनी शुद्ध तथा पूर्ण की हुई प्रतिमें

२ शिमला निवासी मुन्दरामिह मजीठियाके बड़े भाई उमरावसिंह हैं। इन्होंने शिक्षाके विषयमें गम्भीर अनुसन्धान किया है। अपनी शुद्धप्रति १९४० ई० में वेददर्शनाचार्य म० म० स्वामी गोपेश्वरानन्द महाराजक भेंट की थी। महाराजोंके 'अगदगुदर्थचन्द्र'—'पुन्यकालय' में वह प्रति सुरक्षित है।

आपिशलिमुनिवृत्त लिखते हैं—“स्वा० दयानन्दजीको ज्ञात नहीं था कि यह आपिशलिमुनिवृत्त शिक्षा है ॥”

२. कल्प—मन्त्र विनियोगादिपूर्वक याग-प्रयोगोंका शृंखला-बद्ध निरूपण तथा गर्माधानादि संस्कारोंका विधान कल्प ग्रन्थोंमें होता है। ये प्रधानतया तीन प्रकारोंमें विभक्त हैं—
(१) श्रौत सूत्र, (२) गृह्य सूत्र, (३) धर्म सूत्र,। श्रौत सूत्रोंमें श्रौत यज्ञ-सम्बन्धी मन्त्रादिविनियोग शाखान्तरस्थ कर्म-अङ्गोंका संप्रद तथा गृह्यसूत्रोंमें गर्माधानादि संस्कारोंका विशद विवेचन होता है। धर्मसूत्र वर्णाश्रमोपयोगी धर्मों और सामाजिक नियमोंको बताते हैं। इन सूत्रग्रन्थोंका परिचय द्वितीय सोपानमें सम्बद्ध शाखाओंके साथ दिया जायगा।

३. व्याकरण—वेदाङ्गोंमें व्याकरणका विशेष स्थान है। शब्द-साधुत्व और सधु शब्द-प्रयोग—विज्ञान तथा प्रकृति प्रत्यय विभाग पुस्तक शब्दार्थ—ज्ञान व्याकरणाग्रत है। वैदिक व्याकरण-सम्बन्धी प्राचीन-से प्राचीन प्रयत्न प्रातिशाख्योंके रूपमें पाया जाता है। प्रातिशाख्यका अर्थ है—प्रत्येक वैदिक शाखामें प्रचलित-शब्द-स्वरूप एवं पाठ* अस्मादिका नियम-बद्ध वर्णन। इस समय ॥ प्रातिशाख्य-ग्रन्थ उल्लेख है—(१) ऋक्-प्रातिशाख्य,

* “अथर्वो नाधिकारोऽस्ति, सम्यक्पाठमज्ञानतः ।

प्रातिशाख्यमनो सेयं, सम्यक् पाठस्य सिद्धये ॥”

(शु. यज्ञ. शानि. उल्परमाप्योपक्रमे)

(२) शुक्लयजुः—प्रातिशाख्य, (३) साम-प्रातिशाख्य, (४) अथर्व-प्रातिशाख्य, (५) चतुर्ध्यायी, (६) तैत्तिरीय-प्रातिशाख्य ।

१. ऋक्-प्रातिशाख्य—इसे पार्षद-सूत्र भी कहते हैं । महर्षि शौनक प्रणीत है । इसकी प्रथः छन्दो बद्ध रचना है । इसमें तीन बाण्ड-या अध्याय हैं । प्रत्येक अध्याय छः पटलोमें विभक्त है । ऋक् प्रातिशाख्य सर्व-प्रथम १८९७-९९ ई० में रेग्नियर (A. Regnier) ने तीन भागोंमें प्रकाशित किया था । पश्चात्, जर्मनीमें मैक्समूलर (Max Muller) ने सटिप्पण नागरी लिपिमें मुद्रित कराया । १९३१ ई० में लुब्ब-भाष्यसहित ऋग्वेद-प्रातिशाख्यका सम्पादन वैदिक पुनर्व मङ्गलदेव शास्त्री (M. A. D. Phil. Oxon) ने बड़ी योग्यता और परिश्रमके साथ किया है ।

२. शुक्लयजुः—प्रातिशाख्य — कात्यायनमुनि प्रणीत कहा जाता है । आठ अध्यायोंमें विभक्त है । लुब्ब-भाष्य-सहितके कटकता-प्रकाशनानुसार सत्र ७२७ सूत्र हैं ।

३. साम-प्रातिशाख्य—महर्षि-पुन्य-रचित होनेसे पुन्य-सूत्र भी इसकी संज्ञा है । 'सामवेद पुन्य-सूत्र' के नामसे १९०८ ई० में जर्मनीसे आर० सायमनने प्रकाशित किया था । सायन-भाष्य युक्त साम-प्रातिशाख्यके नामसे भी मुद्रित है ।

४. अथर्व-प्रातिशाख्य—सूत्र-बद्ध है । विश्वबन्धु शास्त्रीने बहुतसे हस्त-लिखित सम्पादन किया है ।

१. इसमें अध्याय-विभाग नहीं केवल पटल और सूत्र हैं ।

५. चतुरध्यायी—नामक ग्रन्थ भी अथर्व-प्रातिशाख्य है। जिसका सम्पादन अमेरिकाके प्रसिद्ध विद्वान् व्हिटने (W. D. Whitney) ने किया और अंग्रेजी अनुवाद भी साध लयाया था।

६. तैत्तिरीय-प्रातिशाख्य—में २४ अध्याय हैं। सूत्रात्मक रचना है। अन्तिम अध्यायोंके अन्तमें इक्के-दुक्के श्लोक भी हैं और हैं मार्केके। अन्तिम श्लोक है—

पदक्रमविशेषज्ञो, वर्णक्रमविचक्षणः ।

स्वरमात्राविभावज्ञो, गच्छेदाचार्यसंसदम् ॥

सभी प्रातिशाख्योंका विषय-विश्लेषण यदि किया जाय तो स्थूल रूपसे सात विभाग किए जा सकते हैं—(१) वर्ण-समाम्नाय = स्वरव्यञ्जनोकी गणना तथा उनके उच्चारणादिके नियम। (२) सन्धि = अच्, इल = विसर्ग आदि। (३) प्रभृष्ट संज्ञा, अवग्रह = पद-विभाग-नियम और इसके अपवाद। (४) उदात्त, अनुदात्त शब्दोंकी गिनती, स्वरित-भेद तथा आग्न्यात-स्वर। (५) संहिता-पाठ और पद-पाठमें भेद-प्रदर्शक नियम, सत्त्व, पत्त्व, दीर्घ आदिका विवरण। (६) अथर्व-प्रातिशाख्यमें संहिता-पाठ एवं पद-पाठके अतिरिक्त क्रम पाठके भी नियम बतलाये गये हैं और तैत्तिरीय-प्रातिशाख्यमें अत्र-पाठके भी नियम निर्दिष्ट हैं। (७) साम-प्रातिशाख्यमें सामन्दकी भिन्न-भिन्न प्रकारकी गीतियोंके प्रक्षेप, विश्लेष, वृद्ध अवृद्ध, गत, अगत, उच्च, नीच, कृष्ट, अकृष्ट संज्ञादि उच्चारणवृत्त भेदोंका वर्णन भी पाया जाता है।

आचार्य पाणिनिका बहुत कुछ प्रयत्न लौकिक भाषा-नियन्त्रणके लिए है; फिर भी स्वयं प्रकरण एवं वैदिकी प्रक्रियाका संकल्पन वैदिक जगत्में भी कम ख्याति नहीं रखता । वैदिक व्याकरण पर पाश्चात्य विद्वानोंने भी महत्त्वके ग्रन्थ लिखे हैं — जिनमें मैकडानल (A. A. Macdonell) की १९१० ई० में जर्मनीसे प्रकाशित बड़ी वैदिक ग्रामर बड़े मार्केकी है।

४. निरुक्त वेदका प्रवान अज्ञ है । क्योंकि निरुक्ताध्ययनके बिना मन्त्रोंका आशय स्पष्ट होता ही नहीं* निरुक्तमें वैदिक शब्दोंका सोपपत्ति निर्वचन उदात्त ढंगसे किया गया है । प्राचीन कालमें कई निरुक्त थे । इस समय यास्क-निरुक्त प्रचलित है । यह निबण्टुका माध्य है । इस निबण्टु और निरुक्तकी अट्पट्टी पहिलीमें हमारे कई गण्य मान्य विद्वन् उलझ चुके हैं । जैसे कि मधुसूदन सरस्वतीकी आलोचना सत्यव्रत साम्प्रसीने अपने निरुक्तालोचनमें की है — “अनतिप्राचीनानामाचार्यो वेदानामन्यतः स्वर्गतो विमुक्तो वा उद्यतो मधुसूदनः सरस्वती सङ्ग्राहिकं प्रबन्धं ‘प्रस्थानमेद’ नामेति तत्रेदं अखिलं दृश्यते —” निबण्टु संज्ञाकः पञ्चाव्यात्मको ग्रन्थो भगवता यास्केनैव कृतः इति । तदेतद्विचनं तदीयमेतद्विषयकं छान्दमेव प्रकटयति (निरुक्तालोचन पृ० २२) । अतः इस विषयको विस्पष्ट करनेके

* “अथापीदमन्तरेण मन्त्रेष्वर्थग्रन्थयो न विदते” (नि० १।५।१)

लिए श्रौतमुनि चरितामृतका* गवेषणापूर्ण लेख ही उद्धृत किया जाता है —

“श्रुतिसिद्ध* मुनि सुजन मुनिके शिष्य थे और सुचिष्टिरक्षा १२वीं शताब्दीमें हुए हैं। इनके समकालीन यास्क मुनि वेदोके अद्वितीय पण्डित थे। यास्कको अपनी विद्वत्ता पर पूर्ण अभिमान था। श्रुतिसिद्ध मुनिको छेड़कर विश्वभरमें और कोई विद्वान् यास्ककी टक्करका न था। श्रुतिसिद्ध मुनि पर यास्ककी अगाध श्रद्धा थी। इसके दो कारण थे। प्रथम यह कि यास्क और श्रुतिसिद्धका लक्ष्यैक्य था। जिस प्रकार यास्क वेद-प्रचारमें दत्तचित्त था; ठीक उसी तरह उस पवित्र कार्यमें श्रुतिसिद्धका प्रयत्न कम न था। दूसरा कारण यह था कि यास्कका जहाँ कोई वेद वेदाङ्गोंमें कोई विषय सन्देहास्पद होता था; यास्क श्रुतिसिद्ध मुनिसे उसमें अपना सन्देह निवृत्त कर लिया करते थे। जब कभी किसी सन्दिग्धार्थक वैदिक शब्दका अर्थ पृष्ठने यास्क उनके पास जाते तो श्रुतिसिद्धजी अपने एक गुटकेमें उस शब्दको देख कर यास्कके सन्देहको दूर कर दिया करते थे।

* प्रख्यात उदासीन सम्प्रदायका ऐतिहासिक प्रामाणिक ग्रन्थ है। जिसके प्रणेता हैं — अहमदाबादस्थ विशाल वेद-मन्दिर-प्रतिष्ठापक वेद-दर्शनाचार्य म० म० स्वामी गङ्गेश्वरानन्दजी ।

* उदासीन सम्प्रदायकी सन्तकुमारादि गुरुपरम्परामें शालीसों स्थान श्रुतिसिद्ध मुनिका है। ये ही निष्पण्डुके रचयिता हैं। पुराधर्ममें इनका नाम कदम्ब था।

... एक दिन मुनिजीसे यास्कने कहा — 'मगवन्! यदि आप इस पुस्तिकाको मुझे दे दें। तो आपका मुझ पर बड़ा ही अनुग्रह होगा। वैसे तो मैं आपका अब भी ऋणी हूँ। परन्तु इस अद्वितीय पुस्तकका दान कर मुझे अपना ऐसा ऋणी बनाइए कि मैं जन्मजन्मांतरमें भी आपके इस महान् उपकारसे उरुणः न हो सकूँ। आप विश्वास करें! इसमें मेरा कोई व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं है। मेरा विचार है कि मैं इस पर एक संक्षिप्त भाष्य लिख कर वेदार्थकी प्राप्तिमें प्रति दिन बढ़ रही अड़धनोंको दूर कर दूँ।' मुनिने यास्ककी ओर देख कर कहा — 'धीमन्! आप जो कुछ कहते हैं, सब सत्यार्थ है। आपकी वेदों पर अगाध श्रद्धा देख कर हम आपको यह वेदार्थ-भानु अर्थात् निवण्डु देते हैं।' उस पुस्तकके निवण्डुक, नैगम और दैवत — ये तीन काण्ड और पाँच अध्याय थे। तब यास्कने उस पर निरुक्त लिखा —

इस छंखसे स्पष्ट हो जाता है कि निवण्डु यास्क-निर्मित नहीं;

निवण्डुका भाष्य निरुक्त यास्ककी कृति है। इसके प्रथम अध्यायमें 'निवण्डु' शब्द निर्वचनपूर्वक विषय-प्रवेश, द्वितीय और तृतीयमें नेण्डुक काण्डकी व्याख्या, चतुर्थ, पञ्चम तथा षष्ठम अध्यायमें नैगम काण्डका व्याख्यान, तदनन्तर छः अध्यायोंमें देवता-तत्त्व प्रकाशन-पुस्तक दैवत काण्डकी विशद व्याख्या है। शेष दो अध्याय परिशिष्ट स्वरूप हैं। प्रथम परिशिष्टमें, आत्म-

तत्त्वोपदेश और द्वितीय परिशिष्ट अध्यायमें परम पुरुषार्थ-साधनोंकी चर्चा है ।

(५) छन्दः शास्त्र — गायत्री आदि छन्दोंका स्वरूप बताते हैं । इस शास्त्रका मूल स्रोत ऐ०ब्राह्मण १-५, ६ में पाया जाता है । किन्तु आदिम आचार्य पिङ्गल* मुनि माने जाते हैं । इनके विषयमें प्रसिद्ध है — ‘शेषनागके अवतार थे’ । एक बार पृथिवीकी सैर करके पाताल जाते समय इन्हें साक्षात् मृत्यु स्वरूप भगवान् गरुड़ मिल गये । गरुड़को शौंसा देनेका मार्ग शीघ्र निकाल लिया । पिङ्गल नागको ज्ञात था कि गरुड़ वैदिक छन्दोंका उत्कट जिज्ञासु है; तुरन्त सूत्र-बद्ध भाषामें छन्दोंका सुन्दर स्वरूप बताते हुए निकट समुद्रकी ओर सरकने लगे । गरुड़ मुग्ध भावसे मुन ही रहा था कि समुद्रमें पिङ्गल डुबकी लगा गये —

‘यो विविधवर्णमात्राप्रस्तारात्सांगरं प्राप्य ।

गरुडमवश्यदत्तुलः सह नागः पिङ्गलोजयति ॥

(पिङ्गलवार्तिककार चन्द्रशेखर)

सम्भूत १९२६में कट्यकता-मुद्रित हलपुत्र वृत्ति-सहित पिङ्गल सूत्रके आवार पर इसमें आठ अध्याय हैं । जिनमें क्रमशः १५, १६, ६६, ५३, ४५, ४२, ३४, ३२ सूत्र हैं । प्रथम अध्यायमें ‘मकारादि’ संज्ञा, द्वितीयमें ‘पाद, तृतीयमें गायत्र्यादि

* पिङ्गलादिमिराचार्य, यदुक्तं लौकिकं द्विषां ।

मात्रावर्णविमोदन, छन्दस्तादिह कथ्यते ॥

(केदारभट्ट)

छन्दोंके मेद, चतुर्थमें वैदिक अतिछन्द, गणछन्द, मात्राछन्द और अक्षर-छन्द, पञ्चममें यत्तिवृत्त, षष्ठ तथा सप्तममें लौकिक छन्द, अष्टममें गाथा, प्रस्तागदि निरूपित हैं। वैदिक छन्द प्रायः अक्षर* छन्द ही होते हैं। प्रधानतया इनके सात भेद हैं—(१) गायत्री, (२) उष्णिक्, (३) अनुष्टुप्, (४) बृहती, (५) पंक्ति, (६) त्रिष्टुप्, (७) जगती। प्रत्येक आठ आठ प्रकारका है। इस प्रकार सब ९६ भेद हो जाते हैं। जिनकी अक्षर-संख्या निम्नोक्त चक्रमें बताई गई है।

छन्द-संख्या-चक्र

गायत्री उष्णिक् अनुष्टुप् बृहती पंक्ति त्रिष्टुप् जगती

१. आपी	२४	२८	३२	३६	४०	४४	४८
२. देवी	१	२	३	४	५	६	७
३. आमुरी	१५	१०	१३	१२	११	१०	९
४. मात्रापत्या	८	१२	१६	२०	२४	२८	३२
५. पाजुमी	६	७	८	९	१०	११	१२
६. साम्नी	१२	१४	१६	१८	२०	२२	२४
७. आची	१८	२१	२४	२७	३०	३३	३६
८. ब्राह्मी	३६	४२	४८	५४	६०	६६	७२

* अक्षर गणनामें स्वर स्वतन्त्र अक्षर गिना जाता है; व्यंजन स्वरके साथ मिलकरही अक्षर माना जाता है। जैसे :—“अग्निमन्ते” में चार अक्षर हैं—अग्, नी, नी, ते।

इस चक्रसे स्पष्ट जाना जाता है कि आपी गायत्रीमें २४ अक्षर हैं; आपी उष्णिक्में २८ और आपी अनुष्टुप्में ३२ इत्यादि । यदि किसी वैदिक मन्त्रमें नियत छन्द-अक्षर पूरे न हों तो सन्धि-विश्लेषणादिके द्वारा संख्या-पूर्ति की जाती है । जैसे :—
 ‘चाग्नये’ = ‘च अग्नये’ । ‘स्वर्’ का ‘सु अर’ और ‘वरेण्यम्’ का ‘वरेणियम्’ — इस भावका सूचक पिङ्गल-सूत्र है —
 “इयादि पूरणः” (३।२) । इस सूत्रका अर्थ हजयुक्के शब्दोंमें है — “यत्र गायत्र्यादौ छन्दस्यक्षरसङ्ख्या न पूर्यते; तत्र इयादिभिः पूरयितव्या” । इस उपायसे भी यदि अक्षर-संख्या पूरी न होकर, कम रह जाय तो उस छन्दको विच्छन्द कहते हैं । एक अक्षान्यूनको ‘निचृत्त’ और दो अक्षर न्यूनको ‘पिराट्’ विशेषण लगाकर बोला जाता है । जैसे :— ‘२३ अक्षरकी गायत्रीको ‘निचृत्त’ गायत्री कहते हैं । अविकाक्षर छन्द, अतिच्छन्द कहलाता है । एक अक्षर अधिक हो तो ‘भूरिक्’ तथा दो अक्षर अधिक हों तो उस छन्द-नामके पूर्व स्वराट् विशेषण लगाकर बोलाते हैं । अक्षरकी न्यूनता, अधिकताका यह अर्थ कदापि नहीं कि मन्त्र दुष्ट या नष्ट हो जाता है — “नवा एकेनाक्षरेण च्छन्दांसि वियन्ति न द्वाभ्याम्” (ऐ० ब्रा० १।६) इसका अर्थ सायण-शब्दोंमें है — “एकेनाक्षरेण न्यूननाधिकेन

* ‘आदि’ शब्दसे ‘ऊव’ यण् सवर्णरीधे, गुण, वृद्धि आदिका ग्रहण होता है ।

वा च्छन्दांसि नैव नश्यन्ति । तथा च द्वभ्यामक्षराभ्यां न्यूनाभ्याम-
विकाम्यां वा न नश्यन्ति” । शकरी; आदि अन्य छन्दोंके
विस्तृत ज्ञानके लिए कात्यायन-त्रयीत सर्वानुक्रम तथा पिङ्गल-सूत्रादि
देखना चाहिए ।

६. ज्योतिष — वैदिक क्रियाओंका नियत समय
ज्योतिष शास्त्रकी सहायतासे जाना जाता है । ज्योतिषका विषय
अगाध महासागर है । इस पर अधिक प्रकाश डालनेके लिए विशेप
समय और अधिक स्थान, प्रयत्नकी अपेक्षा है । अतः यहाँ
अधिक नहीं कहते । अङ्गपरिचयके साथ साथ प्रयोजन भी
सामान्यतया कहा ही जा चुका है । परन्तु शुद्धादितमूलक पुष्टि-
मार्ग-प्रवर्तक श्री कृष्णमाचार्यके शब्दोंमें अङ्ग-प्रयोजन मनोरम ढंगसे
वर्णित है । जिसका उद्धरण-लोभ संवरण नहीं कर सकते —

षडङ्गानि तथा वेदे, वेदरक्षां फलानि हि ।

स्वरूपतोऽर्थतश्चैव, ह्यनुष्ठानात् विधा हि तत् ॥

शिक्षा छन्दः स्वरूपे तु, निरुक्तं व्याकृतिस्तथा ।

अर्थे ज्योतिस्तथा कल्पो, ह्यनुष्ठाने प्रयोजकः ॥

(सर्वनिर्णय प्र० ७२, ७३)

अर्थात् शिक्षादि छहों अङ्गोंका सामान्य प्रयोजन है — ‘वेद-रक्षा’
इसके तीन प्रकार हैं — ‘स्वरूप-रक्षा’, ‘अर्थ-रक्षा’ और
‘अनुष्ठान-रक्षा’ । ‘स्वरूप-रक्षा’ में शिक्षा तथा छन्दः-शास्त्रका;
‘अर्थ-रक्षा’ में निरुक्त एवं व्याकरणका; ‘अनुष्ठान-रक्षा’ में ज्योतिष

और कल्पका उपयोग होता है। यदि शिक्षादि वेद-रक्षक न होते, तो “ओ नमः सिद्धम्” का “ओना मासी वम्” बना डालनेवाले गुरुरोग “अग्निमीले” को कव ज्योंका त्यों छोड़ने वाले ये ? अर्थका अनर्थ और प्रयोग-व्यत्यय होकर ही रहता। इन अज्ञोंकी कृपासे लाखों वर्ष-पूर्वकी वही वैदिक आनुपूर्वी भाज हमारे समक्ष है जिसकी महत्ता विश्वमें छाई हुई है।

आर्यपाठ-प्रणालीमें वेद

सबसे महत्त्वकी बात यह है कि जहाँ अन्य जातियोंका स्वल्पायु भी साहित्य नष्ट-भ्रष्ट हो चुका है; वहाँ ऋषियण-प्रचारित विलक्षण पाठ-प्रणालीसे अनुप्राणित होकर हमारी अनादि वेद-वाणी अक्षुण्णरूपेण प्रवाहित पाई जाती है। प्रातःस्मरणीय महर्षियोंकी उस पाठ-प्रथाका परिचय प्राप्त किये बिना पाठकोको सन्तोष न होगा। अतः पूर्वजोंका वह अगाध धैर्य और दुर्धर्ष परिश्रम संश्लिष्ट शब्दोंमें रखा जाता है :—

एक ही ऋक्संहिता प्रागयण-भेदसे तीन प्रकारकी हो जाती है—(१) निर्मुञ्जसंहिता (रूढ़), (२) प्रवृण्ण संहिता (योग), (३) उभय संहिता (योगरूढ़)।

१. निर्मुञ्ज संहिता—वह उच्चारण है जिसमें ऋक्-पदोंका सन्धि-विच्छेद नहीं होता—“सन्धेर्विवर्तनं निर्मुञ्ज-यदग्नि” (ऋक्सूक्ति० १।१।३)। जैसे :—“ओयत्रयः

संवदन्ते सोमेन सहाराज्ञा^१” (ऋ० १०।९७।२२) — यही संहिता-पाठ कहा जाता है।

२. प्रतृण्ण संहिता — सन्धि-रहित (शुद्ध) ऋक्-पदोंका उच्चारण प्रतृण्ण संहिता कहलाता है — “शौद्धाक्षरोच्चारणं च प्रतृण्णम्” (ऋक्ष्प्राति० १।१।३)। जैसे :— “ओपवयः। सं। यदन्ते। सोमेन। सह। राज्ञा।” — इसीका नाम पद-पाठ^२, पद-संहिता भी है।

३. उभय संहिता — ‘निर्मुञ्ज’ और ‘प्रतृण्ण’ — इन दोनोंका समावेश जिस उच्चारणमें है; उसे ‘उभय संहिता’, क्रम संहितादि नामोंसे पुकारते हैं — “उभयं व्याप्तमुभयमन्तरेण” (ऋक्ष्प्राति १।१।३)। जैसे :— “ओपवयः सं। संयदन्ते। यदन्ते सोमेन। सोमेन सह। सह राज्ञा। राज्ञेति राज्ञा।”

उक्त त्रिविध संहिताएँ ऐतरेयारण्यकमें भी श्रुत हैं — “यदि सन्धि विवर्तयति तन्निर्मुञ्जस्य रूपम्, अथ यच्छुद्धे अक्षरे अभिव्याहरति तन् प्रतृण्णस्य, अथ उ एयोभयमन्तरेणोभयं व्याप्तं भवति” (ऐ० ३।१।३) अर्थात् जिस उच्चारणमें सन्धि सुरक्षित है, वह निर्मुञ्जका तथा जो सन्धि-रहित (शुद्ध) पदोंका उच्चारण है, वह प्रतृण्णका स्वरूप है; और जो दोनोंसे सम्बन्ध रखकर आगे जटा, मालादि-रूपमें विकृत हो जावे, उसे उभय संहिता कहते हैं।

१. क्रमादिके उदाहरणोंमें यही (ऋषाका) पूर्वार्ध यथामन्मच लखा जायगा।

२. “पदविच्छेदोऽसंहितः” (ऋक्ष्प्रातिनाम्न्य)।

विकार-अष्टक

‘क्रमसंहिताका सहारा लेकर आठ विकार किये जाते हैं —

(१) ‘जटा’, (२) ‘माला’, (३) ‘शिखा’, (४) ‘रेखा’,
(५) ‘ध्वज’, (६) ‘दण्ड’ (७) ‘रथ’, और (८) ‘घन’ ।

महर्षि व्यादिने विकृतिवल्लीमें इनका विस्तृत वर्णन किया है —

“जटा माला शिखा रेखा, ध्वजो दण्डो रथो घनः ।
अष्टौ विकृतयः प्रोक्ताः, क्रमपूर्वा महर्षिभिः ॥”

(वि० १।५)

१. ‘जटा’—इसमें क्रमसंहिताके दोनों पद तीन बार बोधे जाते हैं । प्रथम और तृतीय वारमें अनुलोमसे, मध्यमें विलोम^१ (विपरीतक्रम) से पढ़ोका उच्चारण होता है । जैसे :—

“ओपत्रयम् सं, समोषवयः, ओपवयस् सम् । सं वदन्ते, वदन्ते सं, सं वदन्ते । वदन्ते सोमेन, सोमेन वदन्ते, वदन्ते सोमेन । सोमेन सह, सह सोमेन, सोमेन सह । सह राजा, राजा सह, सह राजा । एवेति राजा ॥”

२. ‘माला’—मालाके दो वेद हैं—‘क्रममाला’ और ‘धुन्यमाला’ विस्तार-भेदसे केवल क्रममालाका उदाहरण

१. “क्रमः स्मृतिप्रयोगः” : (श्रुत्यादि० सू० ४।१८) ।

२. “अनुलोमविद्योमाभ्यां, त्रिवारं द्वि पठेयमम् ।

विद्योमे पदव्यन्धिः, अनुलोमे ययत्तमम् ॥”

रखा जाता है । इसमें मन्त्रार्थके आरम्भिक दो पद आरोह और अन्तमें दो पद अवरोह-क्रमसे धोले जाते हैं ।^१

क्रममाला — “ ओषधयः सं । राज्ञेति राज्ञः ।

सं वदन्ते । राज्ञा सह ।

वदन्ते सोमेन । सह सोमेन ।

सोमेन सह । सोमेन वदन्ते ।

सह राज्ञा । वदन्ते सं ।

राज्ञेति राज्ञा । समोषधयः । ”

३. शिखा^२ — वह ‘जटा’ शिखा, कहलाती है; जिसके उत्तरमें कम-प्राप्त पदका पाठ हो । जैसे :—

“ ओषधयः सं, समोषधय, ओषधयः सं — वदन्ते ।

सं वदन्ते, वदन्ते सं, सं वदन्ते — सोमेन ।

वदन्ते सोमेन, सोमेन वदन्ते, वदन्ते सोमेन — सह ।

सोमेन सह, सह सोमेन, सोमेन सह — राज्ञा ।

सह राज्ञा, राज्ञा सह, सह राज्ञा । राज्ञेति राज्ञा ॥ ”

४. रेखा^३ — क्रमशः दो, तीन, चार, पाँच पदोंको

१. “ मृगान्तमदिपर्यासार्वभस्यादितोऽन्ततः ।

अन्तं चादि नयेदेव क्रमादेति गीयते ॥ ”

२. “ पदोत्तरं जटामेव, शिरामार्याः प्रचक्षते । ”

३. क्रमाद्विधिवनुपपन्नपदक्रममुदाहरेत् ।

पृथक् पृथक् विषयस्य देयमाहुः पुनः क्रमात् ॥

प्रथमवार अनुक्रम और द्वितीयवार व्युत्क्रमसे बोलकर अन्तमें आरम्भके दो पदोंका वैसा ही उच्चारण करना रेखा है जैसे :—

दो पद = ओषधयः सं । समोषधयः । ओषधयः सं ॥

तीन पद = सं वदन्ते सोमेन । सोमेन वदन्ते सं । सं वदन्ते ॥

चार पद = वदन्ते सोमेन सह राज्ञा । राज्ञा सह सोमेन वदन्ते । वदन्ते सोमेन ॥ सोमेन सह । सह राज्ञा । राज्ञेति राज्ञा ॥

६. ध्वज^१ — क्रम-पदोंका आरोह और अवरोह साथ साथ जहाँ होता है; उसे ध्वज कहते हैं । उदाहरणमें उक्त ऋचाका उत्तरार्ध भी रहेगा । उत्तरार्ध यह है — “ यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तं राजन् पारयामसि ” । ध्वज-उदाहरणः—

“ ओषधयः सं । पारयामसीति पारयामसि ।

सं वदन्ते । राजन् पारयामसि ।

वदन्ते सोमेन । तं राजन् ।

सोमेन सह । ब्राह्मणस्तं ।

सह राज्ञा । कृणोति ब्राह्मणः ।

राज्ञेति राज्ञा । यस्मै कृणोति ।

यस्मै कृणोति । राज्ञेति राज्ञा ।

कृणोति ब्राह्मणः । सह राज्ञा ।

१. ध्रुवशब्दः क्रमं सम्यगन्तादुत्तारयेत्यदि ।

यगे च ऋचि वा यत्र पठनं स ध्वजः स्मृतः ॥

ब्राह्मणस्तं । सोमेन सह ।

तं राजन् । वदन्ते सोमेन ।

राजन् पारयामसि । स वदन्ते ।

पारयामसीति पारयामसि । ओषधयः सं ॥ ”

६. दण्ड — अर्द्धर्चके प्राथमिक दो पदोंका अनुक्रमसे तथा विपरीतक्रमसे उच्चारण । ततः पूर्व-पूर्वपदका क्रमशः उत्तर-उत्तर पदके साथ जोड़ा बनाकर समुच्चय करते हुए प्राथमिक विपरीत-क्रम जोड़ेके पूर्व प्रत्येक पर्यायका अन्तिम पद जोड़ते जाना दण्ड-पाठ कहलाता है* । जैसे :—

“ ओषधयः सं । समोषधयः ।

ओषधयः सं । सं वदन्ते ॥ वदन्ते समोषधयः ।

ओषधयः सं । सं वदन्ते । वदन्ते सोमेन ॥ सोमेन
वदन्ते समोषधयः ।

ओषधयः सं । सं वदन्ते । वदन्ते सोमेन । सोमेन सह ॥
सह सोमेन वदन्ते समोषधयः ।

ओषधयः सं । सं वदन्ते । वदन्ते सोमेन । सोमेन सह ।
सह राजा ॥ राजा सह सोमेन वदन्ते समोषधयः ।

ओषधयः सं । सं वदन्ते । वदन्ते सोमेन । सोमेन सह ।
सह राजा ॥ राज्ञेति राजा ॥ ”

* “ क्रममुक्त्वा विषयस्य पुनश्च क्रममुत्तरम् ।

अपेक्षितवमुक्तोऽयं क्रमदण्डोऽभिधीयते ॥ ”

७. रथ—ऋचाके पूर्वार्ध और उत्तरार्धका साथ साथ दण्डकी तरह उच्चारण करना रथ* कहलाता है । इसके 'द्विचक्रक', 'त्रिचक्रक', 'चतुश्चक्रक'—तीन भेद हैं । विस्तार-भयसे सब भेदोंको न दिखा कर केवल द्विचक्रक तथा चतुश्चक्रकका कुछ अंश दिखाया जाता है ।

१. द्विचक्रक—“ओपधयः सं । यस्मै कृणोति । ; ..

समोपधयः । कृणोति यस्मै । ; ..

ओपधय सं । यस्मै कृणोति ।

सं वदन्ते । कृणोति ब्राह्मणः । ; ..

वदन्ते समोपधयः । ब्राह्मणः कृणोति यस्मै ।

ओपधयः सं । यस्मै कृणोति ।

स वदन्ते । कृणोति ब्राह्मणः ।

वदन्ते सोमेन । ब्राह्मणस्तं ।

सोमेन वदन्ते समोपधयः । तं ब्राह्मणः कृणोति यस्मै ।

ओपधय सं । यस्मै कृणोति ।

सं वदन्ते । कृणोति ब्राह्मणः ।

वदन्ते सोमेन । ब्राह्मणस्तं ।

सोमेन सह । तं राजन् ।

सह सोमेन वदन्ते समोपधयः । राजर्षस्तं ब्राह्मणः कृणोति यस्मै ।

ओपधयः सं । यस्मै कृणोति ।

सं वदन्ते । कृणोति ब्राह्मणः ।

* “पदशोऽर्धेभ्यो वापि पठेत्या दण्डरथः ।”

वदन्ते सोमेन । ब्राह्मणस्तं ।

सोमेन सह । तं राजन् ।

सह राज्ञा । राजन् पारयामसि ।

राज्ञेति राज्ञा । पारयामसीति पारयामसि ॥”

ऐसे ही भिन्न भिन्न ऋचाओं के कोई भी दो अर्ध इस ‘स्थ’—प्रथा से पड़े जा सकते हैं ।

(२) चतुश्चक्रार्थमें दो अर्धों के चार चार पदों का उच्चारण

किया जाता है—

“ओषधयः सं, सोमेन सह । यस्मै कृणोति, तं राजन् ।

सोपधयः, सह सोमेन । कृणोति यस्मै, राजंस्तं ।

ओषधयः सं, सोमेन सह । यस्मै कृणोति, तं राजन् ।

सं वदन्ते, सह राज्ञा । कृणोति ब्राह्मणः, राजन्

पारयामसि ॥” इत्यादि

प्रथम घन—अन्तसे आदि और आदिसे अन्त तक

द्विगुण क्रम-पाठका नाम घन * है—

“राज्ञेति राज्ञा । सह राज्ञा । सोमेन सह । वदन्ते सोमेन ।

सं वदन्ते । ओषधयः सं । सं वदन्ते । वदन्ते सोमेन । सोमेन

सह । सह राज्ञा । राज्ञेति राज्ञा ॥”

* ‘घन’ के दो भेद होते हैं—‘घन’ और घनवन्धन । प्रत्येक भेद के दो प्रकार होते हैं—इनमेंसे प्रथम घनका लक्षण है—

अन्तात्कमं षटेत् पूर्वमादिपर्यन्तमानयेत् ।

अदिक्रमं नयेदन्तं घनमाहुर्मनीषिणः ॥

द्वितीय धन— शिखा-पाठके अनन्तर उसका विररीत पाठ, अन्तमें शिखाके पदोंका पाठ ही (द्वितीय) धन^१ कहलाता है:—

ओपधयः सं, समोपधयः, ओपधयः सं,—वदन्ते । वदन्ते समोपधयः ।

ओपधयः सं वदन्ते, ॥

सं वदन्ते, वदन्ते सं, सं वदन्ते,—सोमेन । सोमेन वदन्ते सं ।

सं वदन्ते सोमेन ॥

वदन्ते सोमेन, सोमेन वदन्ते, वदन्ते सोमेन,—सह । सह सोमेन

वदन्ते । वदन्ते सोमेन सह ॥

सोमेन सह, सह सोमेन, सोमेन सह,—राज्ञा । राज्ञा सह सोमेन ।

सोमेन सह राज्ञा ॥

सह राज्ञा; राज्ञा सह, सह राज्ञा । राज्ञेति राज्ञा ॥

आम्नायके ये आंग्रठन इसलिए महर्षियोंने अपनाये हैं कि इन पाठ-प्रथाओंमें बहकर उनकी स्वाध्याय गंगा सदैव शुद्ध बनी रहे; कोई प्रक्षिप्त धुमने न पावे । आर्ष पाठ-प्रणालीका यही स्वल्प परिचय दिया गया है । विशेष ज्ञानके लिए महर्षि व्याङ्गि-कृतं विवृतिवल्ली तथा अन्य चरण-व्यूहादि ग्रन्थोंका अध्ययन करना चाहिए ।

^१ शिखामुखा विपर्यस्य, तत्पदानि पुनः पठेत् ।

अयं धन इति प्रोक्त, इत्यष्टौ विवृतीः पठेत् ॥

जब सामवेदकी ओर हमारा ध्यान जाता है, तब वहाँ की अभेद्य रक्षा-पद्धि देखते ही मुग्ध हो जाते हैं। यहाँ की अक्षर-गणना-पद्धति किसे आश्चर्यमें नहीं डालती? यह पद्धति एक ऐसा सन्देश है जिसमें एक एक मात्रा अकड़ी हुई है। जैसे:—

१०८४ रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रै सन्तु तुविवाजाः ।

छुमन्तो याभिर्मदेम ॥ १ ॥

१०८५ आ घ त्वावान् त्मना युक्तः स्तोतृभ्यो

घृष्णवीयानः । ऋणोरक्षं न चक्रयोः ॥ २ ॥

१०८६ आ-यद् इवः शतकृतवा कामं जरितृणाम् ।

ऋणोरक्षं न शचीभिः ॥ ३ ॥

(धा० १८।३० रात्व० ४) (ठी) ॥

इस सूक्तके अन्तमें दी हुई कोष्ठित संख्या (धा० १८। ३० रा० ४) का तथा (ठी) अक्षरका भाव हमें निकाटना है।

प्रथम मन्त्रमें * चिह्न-रहित अक्षर हैं—नः स, स, न्तु=४

द्वितीय " " " —घृ, ण्य, वि, र=४।

तृतीय " " " —य, दु, श, त, क, का, ज,

मि, र, श, =१०

* चिह्न-रहित अक्षरों के लिए द्वितीय सोपानका 'साम'—प्रकरण द्रष्टव्य है।

पूरे सूक्तमें १८ अक्षर चिह्न रहित हैं। यही 'घा० १८' का अर्थ है। बिना चिह्नके अक्षर 'घारी' + कहलाते हैं।

दूसरी सङ्ख्या '८० २' का अर्थ=पूरे सूक्तमें दो उदात्त हैं—^{२३}णो, ^{२३}णो।

तीसरी सङ्ख्या 'स्व० १' का तात्पर्य है=पूर्ण सूक्तमें चार स्वरित हैं—^{२२}ग्रयोः, ^{२२}वः, ^{२२}मं, ^{२२}ची।

इस स्वर-गणनासे सौक्य प्रमाद कदापि नहीं हो सकता।

अब इन गणिताङ्कोंको निर्भान्त रखनेके लिए अन्तमें तीनों अङ्काङ्कुरोंका बीजाक्षर 'ठी' रक्खा गया है।

इसका रहस्य जाननेके लिए विभाग करें—^३हू+^३हैं। उक्त घारी संख्या १८ को ५ पर भाग देनेसे शेष बचता है—३। इस ३ संख्याको व्यक्त करनेके लिए तृतीय वर्गका * 'हू' व्यंजन

+ घारी संख्यामें मन्त्रके अन्तिम चिह्न-शून्य अक्षर नहीं गिने जाते। अतः यहाँ 'जा.', 'म', 'मिः' छोड़कर १८ संख्या होती है।

* वर्गे ५ होते हैं—क-वर्ग ख-वर्ग, ट-वर्ग, त-वर्ग प-वर्ग।

जहाँ शेष नहीं बचता वहाँके लिए प-वर्ग चुना जाता है। यदि वही पूरे सूक्तमें एक भी उदात्त वर्ण न हो तो 'य', 'र', 'ल', 'व', 'श', में से उचित वर्ण छँटा जाता है; और घारी संख्यामें से एक घटाकर शेष प्रक्रिया की जाती है। जहाँ सूक्त भरमें उदात्त और स्वरित दोनों नहीं होते वहाँ 'ओ'का निर्देश होता है। उदात्तकी समावृत्तस्थानमें जब प्राप्ति घारी संख्या ५ पर पूरी पड़ जाती है तब 'द' मन्त्राक्षर होता है।

चुना गया है । 'उ० २' की सूचना तृतीय वर्गके द्वितीय अक्षरसे दी गई है । शेष 'स्व० ४' का प्रकाशक अपनी स्वर-पंक्तिका चतुर्थ स्वर 'ई' है ।

ऊपर उत्तरार्चिक-गणितका निर्देश दिखाया गया । पूर्वार्चिकमें केवल निर्देश-क्रम भिन्न होता है — प्रथम 'स्वरित' मध्यमें उदात्त और अन्तमें धारी संख्या निर्दिष्ट होती है ।

यह हमारी अनुपम गणित है । बहुत सी विदेश-मुद्रित संहिताओंमें ऊट-पटाँग छप गई है । अपनी कंसीटी पर चढ़ा कर परख लेनी चाहिए ।

उक्त संकेतानुवीक्षणकी सहायतासे यदि 'वेद' शब्दका अन्वीक्षण करें तो ज्ञात होगा कि यह अक्षय सिद्धान्त रत्नोंका एक महान् रत्नाकर है । इस स्वल्प काय पुस्तिकामें किसी भी दिशाकी ओर संकेत मात्र किया जा सकता है —

१ — 'वेद' शब्द = उ + अ + इ + द के । उ, अ, इ से ऋग, यजु, साम — इस वेद-त्रयीकी सूचना है और 'द' का अर्थ है — पर्वत = अचल = अथर्व* । इस प्रकार चारों वेदोंकी व्यञ्जना 'वेद' शब्दमें पाई जाती है ।

२ — 'वेद' शब्दके वा, अ, आ, ई और द भी टुकड़े सहजमें किये जा सकते हैं । वा, अ, आ — ये तीनों वायु,

* पर्वतद्वारतिष्ठमां सत्यतिषेधः । (नि० द० ११।२।१५) = स्थिराणोऽवहितयोगप्रतिपादकोऽथर्ववेद इत्यर्थः ।

अग्नि, आदित्य नमोके आदिम अक्षर होनेसे अग्नि आदि तीन देवोंके प्रतिपादक कहे जा सकते हैं। इन तीनों देवोंकी ई = सम्पत्तिकाद = दाता वेद है। वेदोंमें उक्त देवोंकी ही सम्पत्ति निहित है — “ अग्नेः ऋग्वेदोवायोर्वज्रुर्वेद आदित्यात्सामवेदः । ” उसी सम्पत्ति (विद्या) का दान भगवान् वेद मनुष्योंको कर रहा है। अथवा अग्नि आदि तीनों देवोंमें सम्पत्ति-वितरण कर रहा है। अर्थात् वेद एक पीयूष-पूर्ण महानद है। जो अध्यात्मादि त्रिविध अग्नि आदिके क्षेत्रोंमें समकक्षभावसे प्रवाहित होता हुआ प्रत्येक तम-आच्छन्न, मलिन, संतप्त अन्तरात्मामें कान्ति, पावनता, शीतिमामयी लक्ष्मीका निरन्तर प्रदान करता है। अतः ‘ वेद ’ नाम सार्थक है।

३ — ऊ + अ + ई + द — इन वेदपद-खण्डोंका अर्थ होता है — कामारि शम्भुः — ऊ = भगवान् शम्भु अ = विष्णुके पुत्र ई = कामके द = खण्डक हैं। अतः शिवरूप वेद शैवोंका परम आराध्य देव है।

४ — वेद शब्दके व + ई + द खण्ड करने पर अर्थ निकलता है — व = समुद्रकी (पुत्री) ई = लक्ष्मी द = भायाँ है जिसकी अर्थात् विष्णु भगवान्। विष्णुरूप वेद वैष्णवोंका सर्वस्व ही है।

५ — ‘ वेद ’ (व + ई + द) शब्दका मत्व है — व = बलवान्, भगवान् की, ई = लक्ष्मी भगवतीका द = दाता वेद। शाक्तोंको और चाहिए क्या? भगवतीके परम पावन शुद्ध स्वरूप-

ज्ञानका दाता यदि वेद है तो शक्ति-उपासकोंकी अपार श्रद्धाका भाजन क्यों न होगा ?

६ — सूर्य-उपासकोंके उपास्य देवका सूचक भी 'वेद' शब्द है — वेद = उ + मा + ई + द । अपनी स्वर-पंक्तिमें 'उ' का पाँचवाँ और आ का दूसरा स्थान है । $५ + २ = ७$ सप्त स्वर-युक्त ई = साम-लक्ष्मीके द = दाता अथवा सप्तवर्ण-युक्त ई = प्रमा लक्ष्मीके दाता हैं सूर्य नारायण । अतः सौर मत्तोंकी मठल श्रद्धा वेद पर है ।

७ — पञ्चदेव-उपासकोंमें से शेष रहे गाणपत्य । इनकी भी वेद पर श्रद्धा किसीसे कम नहीं । क्योंकि 'वेद' शब्दके व, ई, द, दुक्केका अर्थ व = मंगल ई = लक्ष्मी शक्ति सिद्धिके द = दाता गणेश हैं ।

८ — इस प्रकार आर्य-संस्कृति के आधारस्तम्भ समस्त देवोंके उपासकोंकी सामूहिक श्रद्धास्पदताका गौरव एकमात्र वेदको ही है । 'वेद' शब्द इतना ही नहीं बताता, अपि तु पुण्यार्थ-चतुष्टय-साधन वेदकी सूचना भी देता है — धर्म-सूचना 'व' खण्ड^१से, अर्थ-बोध 'ई' खण्डसे, काम-ज्ञान 'इ' दुक्केसे और मोक्ष-अवगमन 'द' भागसे^२ भरी भाँति होता है । अतः व + ई + इ + द से बने 'वेद' शब्दकी धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष-चतुष्टय-साधन-प्रतिपादकतामें सन्देह-गन्ध तक नहीं रह जाती ।

१. व का अर्थ कन्याप (शब्दस्तोत्र - म०) । कन्यापञ्चम पद है ।

२. दो अवगमनेका 'द' कना है; जिसका अर्थ — संसार-नाशक माध दिया जा सकता है ।

शब्द, अर्थ एवं अनुष्ठानमें से किसी भी दृष्टि कोणको रखकर जब हम गहरा अनुसन्धान करते हैं, तब वेद-गौरव उत्तरोत्तर प्रकट होकर आनन्द-विभोर करता जाता है। इसका कारण मेरी समझमें यह आता है कि अपरिमित दिव्य भूमा परावर परमानन्द महासागर वेदोदरमें भरा हुआ है “वेदैश्च सर्वैरहमेव वेदः^१” । गवेषक जैसे-जैसे इसके निकट सम्पर्कमें आता जाता है। वैसे-वैसे उसकी मधुरता व्यक्त होती जाती है — “चरन्वै विन्दते मधु^२” । साक्षात्कार होते ही सनस्त भ्रम दुःख दूर हो जाते हैं — “भिद्यते हृदय-प्रस्थिः^३” । फिर भेद कहाँ ? — भिद्यते तासां नामरूपे^४” । तब भय किसका ? — “अभयं हि वै ब्रह्म भवति^५” । वस मही मानव-जीवनका चरम लक्ष्य है। जिसकी प्राप्ति का विश्वमें एकमात्र साधन है भगवन् वेद — “शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति” (मै. आ. ६।२२) ।

स्तुता मया वरदा वेदमाता,
प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम् ।
आयुः प्राणं प्रजां कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसं,
मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्^६ ॥

(अथर्व, १२।७।१)

१. गी० १५।१५। २. ऐतरेय ब्रा० ३३।२। ३. सु. उ. २।२।८ ।
४. प्रश्नो० ६।५। ५. बृह० उ० ४।४।२५ ।

६. वेदमाता पावनी की पावनी स्तुतिके लिए,
यत्न बोद्धा-या किया है माननी हितके लिए ।
आयु पुत्र प्राण लक्ष्मी कीर्ति गो-घन तेज दे,
अन्तमें प्रेरे जनोको ब्रह्म-दर्शनके लिए ॥



द्वितीय सोपान

वेद की रूप-रेखा

‘वेद’ शब्द और उसका अर्थ

वेदोंमें ‘वेद’ शब्द दो प्रकारका उपलब्ध होता है—
 एक अन्तोदात्त^१ और दूसरा आद्युदात्त^२। अन्तोदात्त ‘वेद’
 शब्दका व्यवहार प्रायः कुश-मुटि विशेष^३में होता है। दूसरा
 आद्युदात्त ‘वेद’ शब्द हमारे विचारका विषय है। जो ज्ञान,
 लाभ, सत्ता और विचार इन चार अर्थोंवाले ‘विद्’ धातुसे कारण-
 कारकमें ‘घञ्’ प्रत्यय काने पर निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ
 है कार्याकार्य-ज्ञानका हेतु, अलौकिक आत्मदर्शन-लाभका प्रदान
 साधन, विष्णुन कीर्ति-सत्ताका एकमात्र निमित्त और अद्वैत-
 विचारक मूर्धनियोंका सर्वस्व शब्द समुदाय। निम्नादित श्लोकोंसे
 यह भाव मुख्यतः हो जाता है—

१ वेद (यजु० २-२१) इत्यादि ।

२ वेदः (ऋ० १-७०-५) इत्यादि ।

३ कुशके पत्रास तिनकोंको मित्राच्छ कीवसे मण्ड ऐसी गोंठ
 बनाई जाती है कि बैठे हुए दण्डेचे आगळे जानु (शुश्रू)का आच्छर
 धारण कर ले ।

वेत्ति कार्यमकार्यं च, विन्दतेऽनुत्तमं धनम् ।
 विस्तृति विद्यते कीर्त्या, विन्देऽद्वैतमहो यतः ॥१॥
 अनवद्यं स्वतो मानं, ज्ञानविज्ञानशेवधिम् ।
 अनादिनिधनं वेदं, तं प्राहुर्वेदिका जनाः ॥२॥

वेदोंके विभाग

महर्षि आपस्तम्बादि^१ सूचित करते हैं कि वेदोंके प्रधानतया दो विभाग हैं—संहिता और ब्राह्मण । आरण्यक भाग ब्राह्मणके अन्तर्गत है । उपनिषद् ग्रन्थोंमेंसे अधिकतर उपनिषद् आरण्यकों, कुछ ब्राह्मणों और पवित्रांगित संहिताओंके अन्तर्भूत हैं । कतिपय विद्वान् मुगल्लाके लिए वेदोंके चार विभाग कर लेते हैं—(१) संहिता, (२) ब्राह्मण, (३) आरण्यक और (४) उपनिषद् ।

१. संहिता—कुछ मन्त्रों का ऐसा समुदाय, जो पद-पाठादिक्रमसे द्विजातियोंकी वंश-परम्परामें अनादि कालसे चला आता है,

२. ब्राह्मण—मन्त्रकी एक संज्ञा ब्रह्म^२ भी है—ऐसे मन्त्र ब्रह्मका निर्वचन, विनियोग और कर्मका विधान, परिवर्धनादि

१—“मन्त्रब्राह्मणयो वेदनामधेयम्” (जात० श्रौ० सू० २४ । १ । ३१; सन्या० श्रौ० सू० १ । १ । ४; कात्या० प्रतिसा सूत्र) इत्यादि ।

२—कर्म-सापेक्ष देवतादि परार्थोंका स्मरण दिग्दर्शनाले वाक्योंका मन्त्र कहते हैं । मन्त्र-लक्षणादिका विस्तार जै० सू० २ । १ । ३२में तथा बृहद्देवता. १ । ३४में देखना चाहिए ।

३—“ब्रह्म वै मन्त्र” (सत० ७ । १ । १५)

करनेवाले वाक्योंको यहाँ ब्राह्मण कहा जाता है। जैसा कि वाचस्पतिके वचनसे प्रकट है —

नैरुक्त्यं यस्य मन्त्रस्य, विनियोगः प्रयोजनम् ।
प्रतिष्ठानं विधिश्चैव, ब्राह्मणं तदिहोच्यते ॥

कई पाश्चात्य तथा अर्धपाश्चात्य व्यक्ति ब्राह्मण भागको वेद नहीं मानना चाहते। उनका पक्ष है कि ब्राह्मण भाग वेदका व्याख्यान है; वेद नहीं। संहिता भाग मात्र वेदपदात्म्य है। दूसरी बात यह है कि गोपथ ब्राह्मणादिमें वेद और ब्राह्मणका साहित्य बताया है — “एवमिमे सर्वे वेदा निर्मिताः सकल्पाः सरहस्याः सत्राह्वणाः सोपनिषत्काः” गोप० पू० २।१०)। दो भिन्न भिन्न पदार्थोंका ही साहित्य लोक-दृष्ट है। अतः वेदसे ब्राह्मणको पृथक् ही मानना होगा। ऐसे श्रमोंका मूल निदान भाष्यश्रवणोंका अनवधान है। भाष्य-वाक्योंमें परस्पर व्याख्यानव्याख्येयभाव रहने पर भी ‘भाष्यत्व’ समान माना जाता है। यदि व्याख्येय भाष्यके व्याख्यान अभिप्राय नहीं, कि व्याख्येय संहितारूप वेदके व्याख्यान वचन ब्राह्मण अपेक्षित कैसे हो सकते हैं? रही बात दूसरी ‘सत्राह्वणाः’ को — इसका निगमन महर्षि पतञ्जलि बहुत पहले कर चुके हैं —

“समुदायेषु हि वृत्ताः शब्दा अवयवेष्वपि वर्तन्ते” (महामा० पृष्ठशा०) अर्थात् समूह-वाचक शब्दका व्यवहार

समूह-घटक प्रत्येक एकाईमें भी देखा जाता है जैसे किसी देशके प्रत्येक भागको उस देशके नामसे पुकारते हैं। इसी प्रकार मन्त्र तथा ब्राह्मण—इन दोनोंके समुदायका वाचक वेद शब्द प्रत्येक भागमें प्रयुक्त हो सकता है। जहाँ 'सत्राक्षणाः' कहा गया है, वहाँ वेद शब्दका अर्थ है—केवल संहिता भाग। संहिता और ब्राह्मणका व्यक्तित्व भिन्न भिन्न होनेसे साहित्य-सामञ्जस्य सम्यक् निम जाता है। इसी प्रकार और भी शङ्काओंके समाधान दृग्दर्शी महर्षियोंने कर दिये हैं। यहाँ उनका उल्लेख विस्तार भयसे नहीं किया जाता।

३. आरण्यक — प्रायः वानप्रस्थाश्रमके उपयोगी कृत्य-कलापका रहस्यमय वर्णन करनेवाले, अरण्य-पठनीय वाक्य-राशिकी प्रख्या आरण्यक है। ऐतरेय ब्राह्मण-भाष्यके प्राक्कथनमें सायणाचार्यने लिखा है — “आरण्यव्रतरूपं ब्राह्मणम्” अर्थात् वन-वासी वानप्रस्थके यज्ञादि कर्म बतानेवाले ब्राह्मणवाक्य ही ‘आरण्यक’ कहे जाते हैं। आरण्यकका दूसरा नाम रहस्य भी आता है।

४. उपनिषद् — अध्यात्म विद्याके गूढ़तम रहस्योंके विशद विवेचनात्मक-वचनोंको उपनिषद् कहते हैं। जन्म-मरण रोगकी अचूक औषध यदि कहीं है तो भारतीयोंकी इस महानिधिमें है। उपनिषदोंका चरम ध्येय, आत्माकी अपरोक्षानुभूति तक अधिकारीको पहुँचाना है। वेदोंके अन्तिम भाग तथा निर्णीत सिद्धान्तरत्नोंकी मञ्जूषा होनेसे उपनिषद्की दूसरी समाख्या ‘वेदान्त’ है।

वेदोंके भेद और सम्प्रदाय

चार वेद — वेद चार हैं — (१) ऋग्वेद, (२) यजुर्वेद, (३) सामवेद, (४) अथर्ववेद । इन चारों वेदोंको 'त्रयी' भी कहते हैं । 'त्रयी' शब्द पर पर्याप्त प्रकाश पूर्व सोपानमें डाला जा चुका है । इन वेदोंके दो साम्प्रदाय प्रचलित हैं — एक ब्रह्म-सम्प्रदाय और दूसरा आदित्य सम्प्रदाय । ब्रह्मादि पुराणोंमें उपाख्यान मिलता है —

कल्पारम्भमें शङ्खासुर उपाधि धारी हयग्रीवके साथ भगवान् विष्णुने वोर युद्ध किया । विजयलक्ष्मी

१. ब्रह्म-सम्प्रदाय

भगवान्के हाथ लगी । इतना ही नहीं, जो सामान दैत्यने दूसरोंका चुरा रखा था, उसे भी भगवान् छूट ले आये । जिसमें वेद और पृथिवी आदि थे । भगवान्ने पृथिवीको अपने स्थान पर ठिक्का दिया और वेदको ब्रह्माके पास पहुँचाकर सावधान रहनेका अनुरोध किया । ब्रह्माजीने तुरन्त उस वेदकी दो प्रतियाँ बना लीं । एक अपने पास रक्खी और दूसरी प्रति भगवान् आदित्यकी अति गुप्त लाइब्रेरी (Library) में जमा करा दी कि कहीं मुझसे फिर कोई छीन न ले । एक और बुद्धिमत्ताकी — जोर ही बमिष्ठादिको उत्पन्न करके वेद-अभ्यापन-आरम्भ कर दिया । विधिपूर्वक ब्रह्मासे अध्ययन करके महर्षि वसिष्ठने अपने पुत्र शक्तिको, शक्तिने अपने पुत्र पद्माङ्गको तथा पराशरने अपने नौका-उत्पन्न पुत्र भगवान् कृष्णाद्वैपायनको पढ़ा

दिया। द्वापयुगका अन्तिम समय था। भगवान् पार्श्वशरने उस एक वेदके चार भेद किये। सब ऋग् मन्त्र एकत्र कर ऋग्वेद बनाया, यजुर्भन्त्रोंको चुनकर यजुर्वेद, सामभन्त्रोंसे सामवेद और शेष विविध विषयोंसे अथर्ववेदका सङ्कलन किया। इस महान् कार्यके उपलक्ष्यमें आपको वेदव्यासकी उपाधि मिली। महर्षि वेदव्यासने चारों वेद पृथक् पृथक् चार शिष्योंको पढ़ाये — पैलको ऋग्वेद, वैशम्पायनको यजुर्वेद, जैमिनिको सामवेद और मुमन्तु^१को अथर्ववेद। शिष्य-प्रशिक्षणकी लम्बी परम्परामें चारों वेदोंकी अनन्त शाखाएँ हो गईं — वन यहीं ब्रह्म-सम्प्रदाय है।

योगीश्वर याज्ञवल्क्यने पहले ब्रह्मसम्प्रदायस्य महर्षि विदग्ध

शाकल्यसे अध्ययन करना आरम्भ

२. आदित्य-सम्प्रदाय किया। परन्तु किसी कारण वश

गुरुसे खट-पट होगई। वहाँसे चले

दिये। पढ़ा-पढ़ाया वहीं आचार्यके सम्मुख देर कर दिया कि

कहीं गुरु शाप न दे डाले। अब याज्ञवल्क्य अपने मामा आचार्य

वैशम्पायनसे पढ़ने लगे। किन्तु बाह रे! भाग्य! मामासे भी यह

विचित्र विद्यार्थी भिड़ पड़ा। वहाँ भी अध्ययन किया हुआ एक

एक अश्वर टगल दिया और चल पड़े। अब याज्ञवल्क्यने निश्चय

कर लिया कि किसी मनुष्यको गुरु न बनाऊँगा। ऐसा ही हुआ

धोमसर तन्त्रिया की। भगवान् आदित्यको प्रसन्न कर लिया।

१. यह मुमन्तु जैमिनि महर्षिके पुत्र मुमन्तुमें भिन्न ही होंगे।

सूर्यनारायणने चारों वेद पढ़ा दिये । गुरु-आज्ञासे याज्ञवल्क्यने बहुत विस्तार किया—यहाँसे आदित्य सम्प्रदाय चला । - - -

एक विरोध—भागवतादि पुगणोंसे पता लगता है कि आदित्यसे याज्ञवल्क्यने यजुर्वेद ही लिया और स्कन्दपुराणादिसे सिद्ध होता है कि चारों वेदोंका अध्ययन किया—

“स तयेति प्रतिज्ञाय, प्रविश्यादित्यवाजिनः ।
कर्णेऽपठत्ततो वेदाँश्चतुरोऽपि हि तन्मुखात् ॥”
(स्कन्द. पु. नागर. २७८)

आत्मपुगणमें भी ऐसा ही है—

“चतुरोऽव्यापयामास स्थापयित्वा रथे निजे ।”
(३७-४०)

और जनकके यहाँ शास्त्रार्थ-प्रियी याज्ञवल्क्य अपने एक शिष्यको सामन्तवाके नामसे सम्बोधित करके गो-टल हँका रहे हैं । सामन्तवाका अर्थ—साम-अध्ययन करनेवाला है । इसमें भी सिद्ध होता है कि याज्ञवल्क्य चारों वेद पढ़े थे और पढ़ाते थे ।

परिहार—उक्त विरोधका परिहार करना आवश्यक है । जब वेद एक ही था उस समय उसका नाम था यजुर्वेद—इसमें प्रमाण भागे यजुर्वेदके प्रकरणमें दिखानेगे । अतः उस एक वेदको चार वेद भी कह सकते हैं और एक भी । यही कारण है कि कहीं आदित्यसे एक वेदका प्रसंग करना लिखा मिलता है । कहीं विभाग-कालीन दृष्टिसे चारों वेदोंका पढ़ना पाया जाना है । यह

निश्चित है कि याज्ञवल्क्य चतुर्वेदी थे और इनसे ही आदित्य-सम्प्रदायका प्रसार हुआ।

१—ऋग्वेद

वेदोंके नाम-करणसे पहले यह जान लेना आवश्यक है कि

चारों वेदोंमें मन्त्र तीन प्रकारके आते हैं—

नाम-करण १—ऋचा, २—साम, ३—यजुः।

१—ऋचा=पादबद्ध=छन्दोयुक्त=पद्यमय

मन्त्रोंको ऋचा कहते हैं मले ही वह किसी वेदमें क्यों न पठित हो।

२—साम=जिन ऋचाओं पर साम (रागविशेष) गाया जाता है, उन्हें साम मन्त्र कहते हैं यद्यपि “गीतिषु सामाख्या” इस जैमिनि सूत्रमें केवल गानका नाम ही साम बताया गया है। परन्तु साम शब्दसे गान युक्त मन्त्रका भी बोध हो सकता है। जैसे गोवृंदादि पदोंकी शक्ति भीमांसक—मत्त में जातिमें होने पर भी उनसे लक्षणादिके द्वारा व्यक्तिका बोध होता है। वैसे ही वहाँ साम शब्दकी शक्ति तो गानमें ही है बोध गान वाले ऋह मन्त्रोंका भी होगा। इसी लिए कई स्थलोंमें सामका अर्थ मिलता है—प्रगीत मन्त्र।

३—यजुः = गद्यात्मक मन्त्रोंको यजुर्मन्त्र कहते हैं। अब ऋग्वेद शब्दकी ओर देखें। ऋक् मंहिता और ऋग्वेदशास्त्रादिके समुदायका नाम ऋग्वेद है। ऋग् बहुल मन्त्रविशेषकी ऋक् मंहिता कहा जाता है। ऋग्वेदकी एक समाख्या ‘होत्र’ भी है क्योंकि यजुमें इसके मन्त्रोंका उच्चारण प्रायः होता ही किया जाता है।

महर्षि पतञ्जलिने पस्पशाहिकमें कहा है कि—

“एकविंशतिधा वाहवृच्यम्”

ऋग्वेदकी शाखाएँ : अर्थात् २१ शाखाएँ ऋग्वेदकी हैं।

चणन्यूहमें उन इन्कीस शाखाओंके

पाँच प्रकार बनाये गये हैं—“एतेषां शाखाः पञ्चविधा मनन्ति

—शाकला, बाष्कला, आश्वलायनीयाः, शाङ्खायनीया, माण्डूके-

याश्चेति”। अर्थात् ऋग्वेदियोंकी शाखाएँ पाँच प्रकारकी होती

हैं—(१) शाकल, (२) बाष्कल, (३) आश्वलायनीय, (४)

शाङ्खायनीय और (५) माण्डूकेय।

१. शाकल शाखाओंके भेद—शाकल्य ऋषिके

पाँच शिष्य थे—(१) मुद्गल, (२) गोखल, (३) वात्स्य, (४)

शालीय, (५) शिशिर—इन शिष्योंके भेदसे—शाकल शाखाएँ

पाँच हो गई। विष्णुपुराणमें लिखा है—

“देवमित्रस्तु शाकल्यः, संहितां तामधीतवान्।

चकार संहिताः पञ्च, शिष्येभ्यः प्रददौ च ताः॥

तस्य शिष्यास्तु ये पञ्च, तेषां नामानि मे शृणु।

मुद्गलो गोखलश्चैव, वात्स्य शालीय एव च॥

शिशिरः पञ्चमश्चासीत्, ॥”

(२) बाष्कल शाखाओंके भेद—चार हैं। जैसा

कि पुण्योमें है—

“चतस्रः संहिताः कृत्वा, बाष्कलो द्विजसत्तमः।

शिष्यान्व्यापयामास, शुश्रूषाभिरतान् हि तान्॥

बोध्यां तु प्रथमां शाखां, द्वितीयामग्निमातरम् ।
पाराशरीं तृतीयां तु, याज्ञवल्क्यामथापराम् ॥”

ब्रह्मा. पु. पृ० ३४। २६। ३७।

अन्यान्य प्रमाणोंमें बौध्यके स्थान पर बौध्य, अग्निमातरकी जगह अग्निमातर और याज्ञवल्क्यके बदले जानूकर्म्य पाठ मिलता है। अतः गवेयणा शील विद्वान् उक्त चार शाखाओंके नाम इस प्रकार बताते हैं — (१) बौध्यशाखा, (२) अग्निमातरशाखा, (३) पराशर शाखा और (४) जानूकर्म्यशाखा।

३. आश्वलायनीयशाखा तथा उसके भेद अज्ञानके गर्भमें हैं। आश्वलायन श्रौत सूत्र तथा षड्गुरु-शिष्यके लेखसे आश्वलायन शाखाका अनुमान मात्र होता है।

४. शांखायन शाखाके भेद — चार हैं — (१) शांखायन, (२) कौपितकि, (३) महाकौपीतकि, (४) शाम्बध्य।

५. माण्डूकेय शाखा की भी वही दशा है, जो आश्वलायनीय शाखाकी है। इसी प्रकार नाम मात्र तो बहुतसी शाखाओं प्रशाखाओंके इतस्तत निकल आते हैं। परन्तु उपलब्ध साहित्य थोड़ा ही है।

‘उपलब्ध शाखाएँ ऋग्वेदकी केवल दो शाखाएँ उपलब्ध हैं — शाकल और बाष्कल। ये भी दोनों पृथक् पृथक् नहीं छपी

१ “शाक्यस्य संहितेका बाष्कलस्य तथापरा ।

द्वे संहिते समाधिन्य, ब्राह्मणान्येक विंशतिः ॥”

(मवांनुक० उपोद्घात)

हैं; अपि तु आजकलकी मुद्रित ऋग्वेद-संहितामें दो प्रकारके विभाग देखे जाते हैं — एक मण्डल, अनुवाक, सूक्त और मन्त्रोंका और दूसरा अष्टक, अध्याय, वर्गादिका विभाग। प्रथम विभाग वाक्य-संहिताका और दूसरा शाकलका है। परन्तु अनुवाकानुक्रमगी-के अनुसार शाकलसे वाक्यमें आठ सूक्त अधिक होते हैं। अतः इन दोनोंका भेद अभी और परीक्षणीय है। सायणभाष्य-सहित ऋग्वेद-संहिता सर्व-प्रथम विदेशोंमें छपी पश्चात् भारतमें। अब तो इसके कई संस्करण निकल चुके हैं। छपी हुई शाकल-संहितामें आठ अष्टक प्रत्येक अष्टकमें—आठ अध्याय; सब मिलाकर ६४ अध्याय, ८९ अनुवाक १०२८ (मतान्तरमें १०१७) सूक्त, २०२४ वर्ग १०९८९ (मतान्तरमें १०९८० और १०४६७) मन्त्र, १९३८३६ शब्द और ४३२००० अक्षर हैं।

१. सर्व-प्रथम मैक्समूलर (Max Muller) ने सन् १८४९ से १८७४ तकके सन्त पश्चिममें सायणभाष्य-सहित ऋग्वेदसंहिता प्रकाशित की। फिर एक और जर्मन विद्वान् (Theodor Aufrecht) ने रोमन लिपिमें जर्मनीसे १८६२-१८६३ में उक्त संहिताका सम्पादन किया। इधर भारतीय भी जागे और बम्बईसे मैक्समूलर-सम्पादित संहिताकी प्रतिलिपि छपा दी। मैक्समूलरने अभियोग बना दिया और परिणाम स्वल्प भरना नाम उस पर भी चेश दिया। सन् १८९१ में पं. राधाकाम शस्त्री तथा शिवराम शर्मासे बहुत परिश्रमसे उक्त संहिताका संस्करण निकला। Max Muller ने अपना दूसरा संस्करण भी १८९३ ई० में

वाष्कलका विवरण इस प्रकार है—

मण्डल	सूक्त-संख्या	मन्त्र-संख्या	ऋषि
१	१९१	२००६	मधुच्छन्दादि-
२	४३	४२९	गृत्समद
३	६२	६१७	विश्वामित्र
४	९८	९८९	वामदेव
५	८७	७२७	भर्त्रि
६	७९	७६९	भगद्वाज
७	१०४	८४१	वसिष्ठ
८	१०३	१६३६	कण्व ^१
९	११४	११०८	मधुच्छन्दादि-
१०	१९१	१७९४	त्रित आस्य दि-
१०	१०१७	१०४७१	
माल विलय	११	८०	
	१०२८	१०५५२	

निकाला । Vaidic Samshodhak mandal ने Tilak Samarak mandir (Poona) से १९३३ ई० प्रकाशित की है । सुन्दर पद-माला-सहित सायण-भाष्य इसमें हैं ।

१. कण्व गोत्रके सब ऋषि 'कण्व'-नामने ॥ उद्धृत हुए हैं ।

ऋग्वेदके ब्राह्मण

इस समय ऋग्वेदके दो ब्राह्मण मुद्रित हैं—एक ऐतरेयब्राह्मण और दूसरा कौषीतकि । कुछ लोग कौषीतकि ब्राह्मणको शाह्यायन भी कहते हैं । परन्तु यह भिन्न प्रतीत होता है ।

(१) ऐतरेय ब्राह्मण—महर्षि महीदासकी माताका नाम ईतरा था । महीदासकी ऐतरेय उपाधि थी । ऐतरेय (महीदास) ने इस ब्राह्मणका इतना प्रवचन किया कि उनके नामसे इसकी प्रसिद्धि हो गई । कई विद्वान इस ब्राह्मणका सम्वन्ध शाकल्य संहितासे बताते हैं । परन्तु ब्राह्मणके अनुशीलन से ज्ञात होता है कि अन्यान्य शाखा-संहिताओं के साथ भी इसका सम्पर्क है । यद्यपि मौलिक सिद्धान्त यह है कि एक शाखाकी एक संहिता, एक ब्राह्मण, एक आरण्यक, एक उपनिषत् और श्रौतादिसूत्र होते हैं । इस प्रकार ऐतरेय ब्राह्मणका भी किसी एक ही शाखा—संहितासे जोड़-मेल होना चाहिए । तथापि ऐतरेय ब्राह्मणमें व्याख्यात मन्त्र केवल किन्नी एक संहिता में नहीं मिलते । अतः कई संहिताओं से सम्वन्ध स्थापित किया जाता है ।

ऐतरेय ब्राह्मण आठ पञ्चिकाओंमें विभक्त है । प्रत्येक पञ्चिकामें पाँच पाँच अध्याय हैं । सत्र अध्याय=४० हैं । प्रथमकी छ पञ्चिकाओंमें सोमयाग वर्णित है; शेष दो पञ्चिकाओंमें राज्याभिषेक । हरिश्चन्द्रादिके उपाख्यान बहुत मनोरम ढंगसे दिये गये

हैं। गोविन्दस्वामी तथा सायणाचार्यके भाष्योंसे यह ब्राह्मण विमूर्षित है। किसी समय भारतके दक्षिणी प्रान्तोंमें इसका प्रचुर प्रचार था—ऐसा चरणव्यूहसे प्रमाणित होता है—

तुङ्गा कृष्णा तथा गोदा, सह्याद्रि शिखरावधि ।

आ आन्ध्रदेशपर्यन्तं, बह्वृचश्चाश्वलायनी ॥

अर्थ - तुंगभद्रा, कृष्णा और गोदावरी नदी तथा सह्याद्रिकी उपत्यकाओंसे लेकर आन्ध्र प्रान्त पर्यन्त ऋग्वेदी आश्वलायन शाखा वाले ऐतरेय ब्राह्मण—अग्येता ब्राह्मण रहते हैं। आजकल भी इन्हीं प्रान्तोंमें कुछ प्रचार रह गया है। इसका सम्पादन^१ बम्बई और पूनामें हुआ है।

२. कौपीतकि ब्राह्मण^२ — ३० अध्यायोंमें विभक्त है। इस पर माधव-पुत्र विनायक-रचित भाष्य है। ऑफ्रेच्ट (Aufrecht) बृहत् सूची भा० १ पृ० १३२के अनुसार बनारस संस्कृत कालेजमें कौपीतकि ब्राह्मण पर मिताक्षरा नामकी टीका हस्त लिखित है। इसकी प्रचार-भूमि उत्तरी गुजरात प्रान्त थी—ऐसा महीदास-उद्धृत एक श्लोकसे सिद्ध होता है—

१. प्रो० हाउग (M Haug) ने बम्बईसे १८६३ ई० में इसे प्रथम प्रकाशित किया था परन्तु आउफ्रेच्ट (Theodor Aufrecht) महादयने कई उपयोगी सूचियोंके साथ यान नगरसे १८७९ ई० में प्रकाशित किया है। जिमनी लिमि रोमन है।

२. प्रो० लीण्डनर (Lindner) ने कौपीतकि ब्राह्मणका सम्पादन जेना नगरसे १८८७ ई० में किया था।

उत्तरे गुर्जरे देशे, वेदो बह्वृच ईरितः ।

कौपीतिकि ब्राह्मणं, शाखा शाङ्खायनी स्थिता ॥

(चरणव्यू टी ४ २)

प्राचीन हस्त-लेखोंकी रक्षाका श्रेय आज भी इस प्रान्तको ही है ।

यद्यपि दोनों ब्राह्मण समान विषयकी चर्चामें व्यापृत है;

किन्तु दृष्टि-कोण विलक्षण है । यदि

दोनोंकी प्रतियोगिता कौपीतिकि की रचना-शैली उत्कृष्टतर है, तो ऐतरेय विषय व्यापकनामें

उन्नततर है । क्योंकि ऐतरेयके अन्तिम दशक-विचारित विषयोंको कौपीनिकि छूटा तक नहीं । ऐतिहासिक विषय-वर्णनामें तो ऐतरेय अपना विशिष्ट स्थान रखता है । भारतीय प्राचीन ग्रन्थ-विद्यालयोंका मयुर स्मरण दिखाना तथा महत्त्वके भौगोलिक विषयों पर पर्याप्त प्रकाश डालना ऐतरेय ब्राह्मणका ही काम है । इन दोनों ब्राह्मणोंके अतिरिक्त और भी बाह्य ब्राह्मणोंके नाम यत्र तत्र उद्धृत-मिलते हैं । परन्तु उनका पूर्णतया ज्ञान नहीं ।

ऋग्वेदके आरण्यक

ऋग्वेदीय आरण्यक ग्रन्थोंमें से दो उपग्रन्थ हैं—ऐतरेय और शाखायन ।

१. ऐतरेय आरण्यक—पाँच कण्डोंमें बँटा है । कण्डोंको आरण्यक भी कहते हैं । पाँचों कण्डोंमें प्रत्येक

१, ७, २, १ और ३ अध्याय हैं। सब मिलाकर १८ अध्याय होते हैं। प्रत्येक अध्यायमें कई खण्ड हैं। प्रथमके तीन काण्डोंमें महीदास (ऐतरेय) का, चौथेमें आश्वलायनका और पाँचवेंमें शौनका नाम अधिक आता है। साम्यण-भाष्यके सहित मुद्रित^१ है।

२. कौपीतकि (शांखायन आरण्यक^२)—में १५ अध्याय हैं। भव अध्यायोंमें क्रमशः ८, १८, ७, १५, ८, २०, २३, ११, ८, ८, ८, ८, १, २, १ खण्ड हैं। सब खण्डोंका योग = १३७ हैं। यह आरण्यक ऐतरेय आरण्यकसे प्रायः विषय-निरूपणमें मिलता-जुलता है। इसके तीसरे अध्यायसे छठे अध्याय तक कौपीतकि उपनिषद् है। यह विद्वानोंको बहुत प्रिय है। हे भां विष्वक्की शौकी—इसमें यदि कहीं विशाल विन्ध्य और हिमाद्रिके उन्नत शिखर, तो कहीं तरङ्गित हे परमानन्द महासागर। कहीं त्रिषय सुषुप्त शयन पर चिरनेदित मानवको जागण-निदेश, तो कहीं सहज विरक्त सन्धको मधुनय उपदेश। एक ओर है—देवराजका युद्ध भयङ्कर दूसरी ओर अति मृदु ज्ञान-गीत प्रियङ्गर !

१. मन्थवन नामधनी-द्वारा मुद्रित साम्यण-भाष्य-सहित १८७२-७६ ई० में।

२. महाशय (A, B Keith) ने आत्मसर्वेस्मे १९०९ ई० ० में अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया है।

ऋग्वेदकी उपनिषद्

मुक्तिकोपनिषद्ने जिन १०८ उपनिषदों बहुत महत्व^१

दिया है। उनमेंसे दसका सम्बन्ध ऋग्वेदसे ठहराया है —
(१) ऐतरेय, (२) कौपीनिकि, (३) नादविन्दु, (४) आत्मप्रबोध,
(५) नियांग, (६) मुद्रल, (७) अक्षमालिका (८) त्रिपुग, (९)
सौमाय, (१०) बह्वृच। इनमेंसे श्री दो अपनी प्रतिपादित विषय-
महनीयताके कारण नितान्त लोक-प्रिय और प्रामाणिक है — ऐतरेय
और कौपीनिकि।

१. ऐतरेयोपनिषद्^२ — तीन अध्यायोंका ग्रन्थ है।

प्रथम अध्यायके प्रथम खण्डमें = सृष्टि निरूपण, द्वितीय खण्डमें
= इन्द्रिय-गोलक-निर्देश, तृतीयमें = अन्न ग्राहक प्राणका निरूपण
है। द्वितीय अध्यायमें = मनुष्य-शरीरकी उत्पत्ति और तृतीयमें =
उपास्य देवका स्वरूप-निर्णय किया गया है।

२. कौपीनिकि उपनिषद्^३में — चार अध्याय हैं।

प्रथमाध्यायका विषय है = पर्यङ्ग — विद्या^४, द्वितीयका = प्राणापासना,

१. सर्वोपनिषदां मध्ये, सारमष्टोत्तर शतम्।

सृष्ट्यनुष्ठानमात्रेण, सर्वार्थोपनिवृत्तनम् ॥ (मु० उ० १।४४)

२. सायण-भाष्य और शाङ्करादि भाष्यो-महित मुद्रित है।

३. कौपीनिकि उपनिषद् शारदायन आरण्यकके अन्तिम भागके रूपमें
पुनर्ले मुद्रित है। आचार्य शाङ्कर और सायणके भाष्य इस पर हैं।

४. प्राणव्ययी पर्यङ्ग सम्बन्धी विद्या।

आध्यात्मिक अग्निहोत्र और विविध उपासनाएँ । चतुर्थाध्यायमें अज्ञातशत्रु तथा गार्ग्यका संवाद सुन्दर ढंगसे दिया गया है ।

एक और—ऋग्वेदकी बाष्कल उपनिषद् भी उपलब्ध है । इसमें एक उपाख्यान अतीव मनोरञ्जक है — देवराज इन्द्र मेपके रूपमें आकर ऋग्व-पुत्र मेवातिथिको स्वर्गमें ले गया । मेधातिथि मार्गमें बोल नहीं सका; स्वर्गमें पहुँचकर कहने लगा — ‘तू कौन?’ उत्तर मिला — ‘मैं हूँ विश्वेश्वर देवराज इन्द्र’ । ‘मुझे यहाँ क्यों ले आया?’ — इस प्रश्नका इन्द्रने उत्तर दिया — ‘घोर अन्धकारसे मैंने पार किया तुम्हें; मुझे धन्यवाद दो’ । वस दोनों शान्त हो गये ।

ऋग्वेदके श्रौतसूत्र

ऋग्वेदको दो श्रौतसूत्र प्रसिद्ध हैं — आश्वलायन श्रौतसूत्र और शांखायन श्रौतसूत्र ।

१. आश्वलायन श्रौतसूत्र — ब्राह्म अध्यायोमें विभक्त है । ऐतरेय ब्राह्मणसे सम्बद्ध है । इसके रचयिता महर्षि आश्वलायन, कौशिक विद्यामित्रके पुत्र थे । आश्वलायन-श्रौतसूत्र पर ग्यारह भाष्यकारोंका पन्ना चला है —

(१) नागयग गर्ग, (२) देवत्रात, (३) विद्यावर, (४) कल्याणश्री, (५) दयाशङ्कर, (६) मण्डन मठ, (७) मधुगनाथ मुखर्ज, (८) महादेव, (९) पुल्लभ-मुत, (१०) पद्मगुरु-शिर्य,

(११) सिद्धान्ती । इस श्रौतसूत्रका प्रकाशन राजेन्द्रलाल मित्रने १८६४-७४ ई० में प्रकाशित किया है ।

२. शांखायन श्रौतसूत्रमें—अड़तालीस अध्याय हैं । शांखायन ब्राह्मणसे इसका घनिष्ठ सम्पर्क है । यज्ञ-पद्धतिका निरूपण इसमें बहुत स्पष्ट हैं । विष्णु और नारायणादि कई पण्डितोंके भाष्योंसे यह सुशोभित है । सर्व-प्रथम इसका सम्पादन हिलेब्राण्ड्ट (A. Hillebrandt) ने किया था ।

ऋग्वेदके गृह्यसूत्र

ऋग्वेदीय गृह्यसूत्रोंमें भी आश्वलायन और शांखायन ही उल्लेखनीय हैं । इन गृह्य सूत्रोंमें गमाधान, जातकर्म, चूड़ा, उपनयन, श्राद्धादिका वर्णन अच्छा है । आश्वलायन गृह्यसूत्रमें केवल चार अध्याय हैं और शांखायन गृह्यमें छः । शांखायन पर प्रसिद्ध भाष्य हैं—मुद्गन्तु, जैमिनि, वैशम्पायन, पैलादिके । रामचन्द्र नामक एक विद्वानने तैत्तिरीयसंहितामें रहकर इस पर भाष्य लिखा है । पहले स्टेन्ज़लर (A. F. Stanzler) ने दो भागोंमें इसका प्रकाशन किया था ।

ऋक्-प्रातिशाख्य

ऋक्-प्रातिशाख्य सूत्र शौनकेके बनये कहे जाते हैं । यह शौनके आश्वलायनके गुरु थे । इस प्रातिशाख्यमें = ३ काण्ड हैं । प्रथम काण्डमें = ६ पटल तथा तीनों काण्डोंमें १०३ ऋषिद्वयार्थ

हैं। प्रथम-प्रथम विष्णुमुत्रने इस पर भाव्य रचा था। तदनन्तर उच्चटने उसीका संस्करण करके तथा भाव्य बना लिया। प्रातिशाख्य सूत्रोंकी छयासे बना हुआ उपलब्ध नामक संश्लिष्ट ग्रन्थ भी उपलब्ध है। कुछ लोग इसे प्रातिशाख्य सूत्र-परिशिष्ट कहते हैं। ऋक्-प्रातिशाख्यका सम्पादन^१ पहले मैक्समूलरने किया था।

ऋग्-अनुक्रमणी

अनुक्रमणीसे मन्त्रोंके छन्द, देवता, ऋषि, विनियोगादि जाने जाते हैं। एक ऋग् अनुयाकानुक्रमणी शौनक-अचित और दूसरी कात्यायन-अणत सर्वानुक्रमणी उपलब्ध है। पङ्गुर-शिश्यने उनपर सम्बत् १९३४में विस्तृत टीका लिखी है। टीकाकार अपना वास्तविक नाम निर्देश कहीं नहीं करता। हाँ! अपने ग्रन्थ छ गुरबोका नाम अवश्य अप लेता है—(१) विनायक, (२) त्रिशूलान्त, (३) गोविन्द, (४) सूर्य, (५) व्यास और (६) शिवयोगी। हमारे प्रातःस्मरणीय प्राचीन लेखक अपने नामको कुछ भी महत्व

१ ऋक्-प्रातिशाख्य—क—Germanमें टिप्पणीके साथ हिन्दी लिप्यामें १८५६-६९ईमें छपा है।

ख—रेग्नियर (Regnier) द्वारा १८५७-५९ई० में ३ भागोंमें।

ग—युगट्टिश्चोर शर्मा—सम्पादित हिन्दी अनुवाद १९०३ ई० में बनारसमें निकला है।

घ—पशुपति नथ और चित्तहरण चक्रवर्ती द्वारा आठ खण्डोंमें है।

नहीं देते थे; कितना ही विस्तृत और सागरभित्त साहित्य क्यों न प्रदान कर रहे हों, परन्तु आज-कल तो किसी ग्रन्थको छूकर ही 'महाधुगन्धर सावैभौमादि अपनी उपायियोंसे तथा अपने बापदादोंकी गुण-गणिमासे ग्रन्थ-कनेवर बृहत्तम बना देते हैं। ऋग्-अनुरूणीका ओन्सकोर्ड-संस्करण मेरे सामने है। पङ्गु-रु-रुच्य रचना वेदार्थ-दीपिका तथा वृत्ति साथ है। मुखपृष्ठ पर लिखा हुआ है—
'Edited by A. A. Macdonell, M. A. Oxford 1886'।
कात्यायन-प्रणीत सर्वानुक्रमणी शाकल संहिताके ऋषि, देवत, छन्दादि विस्तृत गद्यमें बताती है। जीनक अपनी पद्यात्मक अनु-वाकनुक्रमगामें मण्डल, सूक्त, अज्याय, वर्ग, मन्त्रादिका योगफल बताते चले गये हैं। ११ श्लोकोंमें छन्द-सख्या और ४९ श्लोकोंमें शेष समस्त यत्कथ्य समाप्त कर दिया है। कात्यायनने आगममें "श्री गणेशाय नमः" ही लिखा है परन्तु शौन महर्षि पूरा ऐतिहासिक मंगल कर गये हैं—

"सर्वं कर्म सफलं यत्र तुष्टेऽतुष्टे न किञ्चित्तमहं नमामि।
विनायकं गिरिराजेन्द्रपुत्रीमहेश्वरप्रियसूनुं वृणाद्धिम॥"

बृहदेवता

महाकवि जीनक-रचित बृहदेवता ग्रन्थमें ऋग्वेदीय प्रत्येक ऋषि और देवता का वर्णन पौराणिक कथानकोंके सहारे किया गया है। शौनकने शाकल — अश्विनीय शाखामें अपने ग्रन्थोंका सन्तुष्ट स्वयं कर दिया है—

ऋग्वेदे शैशिरीयायां, संहितायां यथाक्रमम् ।

प्रमाणमनुवाकानां, सूक्तैः शृणुत शाकलाः ॥

(अनुवाकानु० ९)

इसी प्रकार ऋग्वेदसे सम्बन्ध रखनेवाले ऋग्विधान, बृद्ध परिशेष आदि ग्रन्थ हैं । परन्तु इन्ने ज़ने साहित्यका विचार समयान्तर पर छोड़ते हुए ऋग्वेदका विषय यहीं समाप्त करते हैं । स्थूल रूपसे ऋग्वेदकी यही रूप-रेखा है ।

२ — यजुर्वेद

पुरातत्त्व-अन्वेषकोंकी दृष्टिमें ऋग्वेदका जितना महत्त्व है ।

उससे कम महत्त्व यजुर्वेदका कर्मठोंकी

यजुर्वेदका महत्त्व दृष्टिमें नहीं । क्योंकि जिस ब्रह्माके पूर्व

मुखसे ऋग्वेदका आविर्भाव हुआ, उसीके

दक्षिण मुखसे यजुर्वेदका । इतना ही नहीं, अपितु व्याससे पूर्व

चारों वेदोंका जो एक ही वेद था; उसका नाम था 'यजुर्वेद' ।

वायु पुराणमें लिखा है :—

“एक एवासीद्यजुर्वेद, स्तं चतुर्वा व्यकल्पयत् ।

चातुर्द्वौत्रिममूतस्मिन्, स्तेन यज्ञमकल्पयत् ॥

आध्वर्यवं यज्ञमिस्तु, ऋग्भिर्हौत्रमेव च ।

औद्गात्रं साममिश्रकै, ब्रह्मत्वं चाप्यथर्वभिः ॥

ब्रह्मत्वमकरोद्यत्ते, वेदेनाथर्वणे न तु ।

नतः स ऋचमुद्धृत्य, ऋग्वेदं समकल्पयत् ॥”

अर्थात् पहले एक ही यजुर्वेद था जिसके चार भेद किये गये ।
उम समयसे होना, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा — इन चारों
ऋत्विजोंके कृत्य-प्रकाशक अंशोंको पृथक् पृथक् कर दिया गया ।
ऋचाओंको पृथक् निकालकर ऋग्वेदके रूपमें एकत्र कर दिया
गया; जिसका सम्बन्ध होतासे है । उद्गाताके सामोंको अलग
करके सामवेद नाम रख दिया गया और ब्रह्मा नामक ऋत्विक्
के भागको भिन्न कर अथर्ववेदका स्वरूप दे दिया गया ।
शेष रह गया अध्वर्युका कृत्य । आजकलके यजुर्वेदमें अध्वर्युके
ही कृत्य हैं; अतः इस यजुर्वेदकी 'आध्वर्यव भी एक समाख्या
है । यज्ञमें भी देखा जाता है कि अध्वर्यु इडा-मक्षणादि—
अवसरों पर होता, उद्गाता, ब्रह्मादिके भाग देकर जेप अपना
भाग खा लेता है । अध्वर्यु ही अनुष्ठानाशमें प्रधान ऋत्विक्
है । फिर इस अध्वर्युके कर्तव्य-ज्ञानका एकमात्र आधार यजुर्वेद
नहीं; अपि तु अधिक ही है । महत्त्वमें किमीसे कम क्यों होगा ?

यजुर्वेदके भेद

यजुर्वेद दो प्रकारका है — (१) शुक्ल और (२) कृष्ण ।

यद्यपि जात्राल संहितामें
'शुक्ल', 'कृष्ण' नाम-निमित्त पूर्वोक्त दो ब्रह्मा और आदित्यके
सम्प्रदायोंका ही नाम कृष्ण और

शुक्ल कहा गया है —

ब्रह्मणः सम्प्रदायोऽयं, व्याससन्दर्शितोऽभवत् ।
 विभक्तस्यैव वेदस्य, सम्प्रदायो द्विधा मतः ॥
 अयातयामसंज्ञोऽयं, कृत्स्नकर्मप्रकाशकः ।
 यावद्ब्रह्मप्रकाशको, रविरूपश्च यो मतः ॥
 ब्रह्मणः सम्प्रदायस्तु, मिश्रत्वान्न तथा मतः ।

अर्थात् ब्रह्म—सम्प्रदायकी मन्त्र ब्राह्मण मिश्रित होनेके कारण यातयाम=सामस वा कृष्ण संज्ञा है । और आदित्य-सम्प्रदाय रवि जैसा मन्त्र ब्राह्मण दोनोंका स्पष्ट प्रकाशक होनेसे अयातयाम=सात्विक अथवा शुद्ध संज्ञावाला है ।

तथापि यजुर्वेदमें और भी निमित्त होनेके कारण यह शुद्ध कृष्ण व्यवहार यजुर्वेदमें ही रह गया । दूसरे निमित्त ये हैं :—

प्रवर्तितः खण्डशस्तै, न सम्पग्बुध्यते नृभिः ।
 आध्वर्यवं क्वचिद्वीत्रं, क्वचिदित्यव्यवस्थया ॥
 बुद्धिमालिन्यहेतुत्वाद्, यजुः कृष्णमीरितम् ।
 याज्ञवल्क्यस्ततः सूर्य—माराध्यास्मादधीतवान् ॥
 व्यवस्थित प्रकरणं, यजुः शुक्लं तदीर्यते ।
 पौराणकी कथामेतां, वेद व्याख्यान आदरात् ॥

(वण्वसंहिता भाष्योपक्रमः)

अर्थात् वण्व संहिताके प्राक्कथन भाष्यमें सायणाचार्य शुद्ध कृष्णके पुराण कथित निमित्तको आदर दे रहे हैं । पुराण-कथित निमित्त यह है—होता और अध्वर्यु आदिके कृत्योंका अव्यवस्था

वा मिश्रण होनेके कारण यजुः की एक शाखाको 'कृष्ण' और व्यम्बिन रूपसे (मन्त्र ब्राह्मण पृथक् पृथक् होनेसे) याज्ञवल्क्य द्वारा प्राप्त दूसरी शाखाको 'शुक्र' नाम मिला ।

वैयासिक चरण व्यूह-भाष्यकरने तो और ही कारण बताया है—“एतत्सगिष्ठं शुक्रियं मन्वाद्दे शुक्रणेन सूर्येण दत्तं तच्छुभ्रयजुः प्रख्यातमित्यर्थः । वेदोपक्रमणे चतुर्दशीयुक्तपूर्णमा-प्रदणत् शुक्रयजुः”, तैत्तिरीयके—वेदोपक्रमणे औदधिक-परिमृशणादर्थार्थकृष्णप्रतिपद्विद्व-पूर्णमासीप्रदणात् कृष्णयजुरिति वा” अर्थात् याज्ञवल्क्यको शुक्रपूर्णमासे मन्वाहके सूर्येण उपदेश किया अन. वाजसनेय स्वाध्यायका शुक्र नाम पड़ा । अथवा वाजसनेयी शाखावाले वेदोध्ययनका आरम्भ चतुर्दशीयुक्तपूर्णमामे अर्थात् शुक्र पक्षमें किया करते हैं; अतः वाजसनेया संहिताका 'शुक्र यजुः' नाम पड़ा और तैत्तिरीय शाखावाले कृष्ण प्रतिपदसे मिली हुई पूर्णिमामें अध्ययन आरम्भ करते हैं अतः तैत्तिरीय संहिताकी सज्ञा कृष्ण यजुः हुई ।

अतएव तो आदित्यसे प्राप्त होनेके कारण ही 'शुक्र' नाम रखना प्रतीत होता है—“आदित्यानीमानि शुक्रानि यजुषि वाजसनेयेन याज्ञवल्क्येनाख्यायन्ते” (अत० १४।२।४३३)

कृष्ण यजुर्वेदकी शाखाएँ

चरणव्यूहके भट्टानुसार कृष्ण यजुर्वेदकी ८९ शाखाएँ होती हैं । महाभाष्यमें तो पूरे यजुर्वेदकी १०१ शाखाएँ और मुक्तिकोश

निपट्रमें* १०९ कही गई हैं। इस समय तो यजुर्वेदकी केवल चार शाखाएँ उपर्युक्त हैं — (१) तैत्तिरीय, (२) कठ, (३) मैत्रायणी और (४) कपिष्ठल कठ शाखा।

(१) तैत्तिरीय शाखा

तैत्तिरीय संहिता—इस संहिताका प्रचार गोदावरी निकटवर्ती दक्षिणी प्रान्तमें है। काण्ड, प्रपाठक और अनुवाक्योंमें विभक्त है। काण्ड = ७ प्रपाठक = ४४ और अनुवाक = ६३१ हैं। मन्त्र संख्या चण्ड्युक्ते अनुसार = १०१८ है। इसका विषय विभाग लौगाक्षि स्मृतिमें इन प्रकार है —

“तानि काण्डानि वेदस्य, प्रवदामि च स्फुटम् ।
पौरोडाशो याजमानं, हौतारो हौत्रमेव च ॥
पितृमेधश्च कथितो, ब्राह्मणेन च तत्परम् ।
तथैवानुब्राह्मणेन, प्राजापत्यानि चोचिरे ॥
तत्काण्डौघविशेषज्ञा, वसिष्ठाद्या महर्षयः ।
तद्विशेष प्रकाशार्थं, सम्यगेतद्विविच्यते ॥

* “नवाधिकशतं शाखा यजुषो मास्तात्मन्” (मु० उ० १।१२)। यदि मुक्तिकोपनिषद्-उक्त “एकैकस्यास्तु शाखाया एकैक्यपनिषन्मता” — इस नियमसे शाखा-संख्या मुक्तिकोपनिषद्में खोजें तो केवल ५१ ही होती है। क्योंकि कृष्ण यजुर्वेदकी उपनिषद्-संख्या ३२ और शुक्ल यजुर्वेद-उपनिषद्-संख्या १९ बताई है। ३२ + १९ = ५१

अष्टकादिविभाग भी इसमें है। कहीं कहीं ७ अष्टक, ४४ प्रश्न, ६५१ अनुवाक २१९८ मन्त्र और ११०२९६ अक्षर भी लिखे गये हैं।

पौराडाशा इपेत्याद्या, अनुवाकास्त्रयोदश ।
तद्वाङ्मणं तृतीयस्यां, प्रत्युष्टं पाठकद्वयम् ॥
पूर्वं चतुश्चत्वारिंशं, काण्डानां तैत्तिरीयके ।
महाशाखाविशेषेऽस्मिन्, कथिता ब्रह्मवादिभिः ॥ १

वसिष्ठादि महर्षिणोक्ती परम्पराका यह विषय-विभाग अति स्पष्ट है ।

तैत्तिरीय ब्राह्मण—इसमें तीन काण्ड^१ हैं । तीनों काण्डोंमें = २८ प्रपाठक हैं । प्रथम काण्डमें = ७८ अनुवाक और द्वितीयमें = ९६ तथा तृतीयमें = १६४ अनुवाक हैं । सबका जोड़ = ३३८ है । इस पर सायण तथा भट्टभास्करके भाष्य है । कटकता और पूनासे छप चुका है ।

तैत्तिरीय आरण्यक—१० प्रपाठकोंका यह ग्रन्थ है । उनमें प्रपाठकोंमें क्रमशः ३२, २०, २१, ४२, १२, १२, १२, ८, १०, ६४ अनुवाक हैं । सब अनुवाकोंकी संख्या = २३३ है । दशम प्रपाठकमें परिशिष्ट रूपसे ८० अनुवाक और हैं । सायणने इसे खिल प्रकरण कहा है । नागयणो-पनिषत् भी यही है ।

तैत्तिरीय उपनिषद्—तैत्तिरीय आरण्यकके सप्तम, अष्टम, नवम, प्रपाठकोंको तैत्तिरीय उपनिषद् और दशम प्रपाठकके

१. तैत्तिरीय ब्राह्मणमें अठ्क, अष्ट्याय, अनुवाकोंका भी विभाग है । परन्तु भाष्यानुसार काण्डवि-विभाग ही है ।

परिशिष्टको नागयण उपनिषद् कहते हैं। सायण शङ्कर आदि आचार्योंके भाष्योंमें तैत्तिरीय उपनिषद् अलङ्कृत है। इसके तीन भाग हैं—(१) शिक्षावल्ली, (२) आनन्दवल्ली, (३) मृगवल्ली। प्रथम वर्द्धीमें स्वा-शिक्षा, सत्यंवाद, धर्मचर आदि और शेष दो में = ब्रह्मविद्याका मर्मस्पर्शा उपदेश है।

तैत्तिरीय श्रौतसूत्र—तैत्तिरीय शाखासे सम्बन्ध रखनेवाले पाँच श्रौतसूत्र हैं—(१) वोवापनीय*, (२) आपस्तम्बीय*, (३) हिण्यपवेशीय*, (४) भागद्वाजीय, (५) वैखानस। सभी मुद्रित हैं। इन पर भाष्य और वृत्ति ग्रन्थोंकी कमी नहीं है।

तैत्तिरीय-गृह्यसूत्र—सभी श्रौत्र सूत्रकारोंने ही गृह्यसूत्र रचे हैं। जिन पर कर्काचार्य आदि महापण्डितोंके भाष्य हैं।

(२) काठक शाखा

“प्राप्ते प्राप्ते काठकं कालापकं च” (ध्या० म० भा

४।३।१०१) — इस पतञ्जलि महर्षिके लेखसे

काठ संहिता* प्रतीत होता है कि किसी समय काठ शाखाका प्रचार भारतके कोने कोनेमें था। उत्तर-प्रान्तोंसे इसका सम्बन्ध अभी भी बना हुआ है। काठ ब्राह्मण

१. १९०४-१० में कैलेंड (W. Caland) द्वारा प्रकाशित।

२. दो भागोंमें गार्बे (R. Garbe) ने १८८१-१९०३ में प्रकाशित किया है।

४. गोपीनाथ और महादेवका संस्करण।

५. काठक संहिता सबसे पहले १९०१ ई० में श्रोडर (L. V. Schroeder) ने प्रकाशित की अब स्वायाम मण्डलसे भी निकली है।

शरीरमें ही पाये जाने हैं। महर्षि वैशम्पायनके शिष्य महर्षि ऋतुशङ्क — प्रवर्तित यह कठ सहिता है। तैत्तिरीय सहिताकी भाँति इसमें भी मन्त्र और ब्राह्मण मिश्रित है। काठक-सहितामें पाँच ग्रन्थ (काण्ड) हैं। १ — इठिमिका*, २ — मध्यमिका, ३ — ओरिमिका, ४ — याज्या अनुवाक्याकाण्ड, ५ — अश्व-मेधान-अनुचन ।

१. इठिमिका — नामक काण्डमें = १८ स्थानक हैं। जिनके क्रमशः ये नाम हैं — पुरोडाश, अ०वर, ज्योतिरिक्, ग्रह, याजमान, अग्निहोत्र ब्राह्मण, आलोभी, दिशस्थानक, उत्सीदन, अग्निविष्णु माहृत, पथस्थानक, पशुबन्ध, वाजपेय, श्रीराजसूय, अग्निवीरिका, ध्रुवक्षिति, चमा ।

२. मध्यमिका — नामक ग्रन्थमें = १२ स्थानक हैं — सामित्र, अपेतवीत, पञ्चचूड, स्वर्ग, दीक्षित, साक्षाति, इष्ट, धिष्य, याचस्वति, आयुज्य, दीर्घजिह्वा और पात्नीयत ।

३. ओरिमिका में = १० स्थानक हैं — पुरोडाश-ब्राह्मण, यजमान-ब्राह्मण, सत्र, एकादशनी, प्रायश्चित्ति, चातुर्नास्य, सत्र, सोत्रायणी, पदक्रन्द, द्विगुण्यगर्भ ।

४. याज्यानुवाक्या — तो ओरिमिकाके ही अन्तर्गत है ।

* इठिमिका आदि नाम उत्तर पहाड़ियोंकी भाषामें मिलत-जुलते प्रतीत होते हैं ।

५. अश्वमेधीयानुवचन—में १३ अनुवचन हैं—
पन्थानुवचन, गणानुवचन, मेघानुवचन, मितानुवचन, जीमूतानुवचन,
इन्द्रानुवचन, पेतवानुवचन, रोहितानुवचन, सोमानुवचन, नमस्कागवचन,
अलिवन्दानुवचन, शाठानुवचन। सब स्थानक = ४०, अनुवचन =
१३, अनुयाक = ४३, मन्त्र = ३०९३, मन्त्र और ब्राह्मण
मिलकर १८००० हैं ॥

कठ-ब्राह्मण—इसका उद्धरण तो कई ग्रन्थोंमें आता
है परन्तु अभा तक पूर्ण उपलब्ध नहीं हुआ। आरण्यककी भी
यही दुर्दशा है।

कठउपनिषद्—कठ उपनिषद् अपने आरण्यकादि
परिवारके तितर-बितर हो जाने पर भी केवल उपलब्ध ही नहीं
अपितु अपना विशिष्ट स्थान रखती है। इसमें दो अध्याय हैं।
प्रत्येक अध्यायमें = तीन बहिर्या हैं। छहों बहिर्योंमें मन्त्र क्रमशः
हैं = २९, २४, १७, १५, १५, १८ सब = ११८ हैं।

इसी उपनिषद्में यम और नचिकेताका प्रसिद्ध संवाद है।
इसपर शङ्करादि आचार्योंके भाष्य हैं।

काठक सूत्र—श्रौतसूत्र और गृह्यसूत्र* दोनों छोगाधि-
प्रणीत हैं। डववाल, ब्रह्मवशादि-वृत्त भाष्य श्रीनगर (कश्मीर)

* ब्रह्मसूत्र (W. Caland) द्वारा मुद्रित है।

तथा लाहोरसे मुद्रित हो चुके हैं। इनके सिवा एक लौगाक्षि-
स्मृति भी उक्त शाखासे सम्बन्ध रखती है। जिसमें ४०००
श्लोक हैं।

(३) मैत्रायणी शाखा

मैत्रायणी संहिता — हरिवंशके चौतीसवें अध्यायमें
लिखा है —

दिवोदासस्य दायादो, ब्रह्मर्षिर्मित्रयुर्नृप ।

मैत्रायणी ततः शाखा, मैत्रेयास्तु ततः स्मृताः ॥”

अर्थात् मित्रयु ऋषि—प्रवर्तित संहिता मैत्रायणी है। तैत्तिरीय
संहिताकी अपेक्षा इसमें प्रकरणोंका संगठन अच्छा है। महाराष्ट्र
और गुजरातमें इसका प्रचार पहले भी महार्णव बताता है—

“मयूराद्रिं समारम्य, यावद् गुर्जरदेशतः ।

व्याप्य वायव्यदेशं वै, शाखा मैत्रायणी स्थिता ॥”

मयूर पर्वत = नासिक मण्डलमें मुल्हेर क्षेत्रके समीप है।
इस संहितामें भी ब्राह्मण भाग मिला हुआ है। चार काण्डोंमें
यह विभक्त है।

प्रथम काण्डमें — ग्यारह प्रपाठक हैं। जिनमें विषय हैं
क्रमशः— दशपूर्णनाम, अध्वर, ग्रह, यजमान-ब्राह्मण, अग्नि उपस्थान,
आधान, पुनराधान, अग्निहोत्र ब्राह्मण, चतुर्दोता, चातुर्मास्य, वाजपेय।

द्वितीय काण्डमें—१३ प्रपाठक हैं। जिनमें १ से ४ तक काम्य इष्टियाँ, पाँचवेंमें=काम्यश्रुत्याग, षष्ठमें=राजसूय और ७ से १३ तक अग्निचयन कर्म है।

तृतीय काण्डमें—१३ प्रपाठक हैं। जिनमें १ से ५ तक अग्निचयन-ब्राह्मण हैं। ६ और सातमें=अव्यगदि-विधि, ८ से ११ तक क्रमशः—आसुर, सङ्क्रान्त, पान्नीवत्, सौत्रामणी हैं। १२ से १६ तक=अश्वमेध वर्णित है।

चतुर्थ काण्डमें—१४ प्रपाठक हैं। प्रथममें=पुगेडाश-ब्राह्मण, द्वितीयमें=गोनामिक, तृतीय और चतुर्थमें=राजसूय-ब्राह्मण, ५ से ८ तक=अव्यगदि-विधि, नवममें=प्रवर्ग्य तथा शेष—पाँच प्रपाठकोंमें=याज्यानुवाक्या हैं। इस संहिताके कई मुद्रण निकले हैं।

मैत्रायणीय आरण्यक—संहिताके अन्तमें ही मैत्रायणीय आरण्यक अथवा उपनिषद् मुद्रित है। उसके ७ प्रपाठक हैं। जिनमें क्रमशः ४, ७, ९, ६, २, ३८, ११ खण्ड हैं।

मैत्रायणी-सूत्र—इस शाखासे सम्बन्ध रखनेवाले मानव श्रौत सूत्र तथा मानव गृह्यसूत्र प्रसिद्ध हैं। मनुस्मृति और मानव गृह्यका परस्पर घनिष्ठ सम्पर्क है। वगह-गृह्यमें बहुतसे इस शाखाके ग्रन्थोंका निर्देश है।

(४) कपिष्ठल कठ शाखा

इन शाखाकी संहिता मन्त्र १९३२ ई० में लाहौर से प्रकाशित हो गई है। इसमें आठ अष्टक हैं। प्रत्येक अष्टक आठ अध्यायों में विभक्त है।

शुक्ल यजुर्वेदकी शाखाएँ

“शुक्लस्य यजुषः पञ्च—दश शाखाः ताः स्मृताः।” — इस कात्यायन मुनिके बचनसे ज्ञात होता है कि शुक्ल यजुर्वेदकी १५ शाखाएँ थीं। परन्तु इस समय दो ही शाखाएँ उपलब्ध हैं :— (१) माध्यन्दिनी और (२) कण्व।

(१) माध्यन्दिनी शाखा

भगवान् सूर्यने दिनके मध्यभागमें इसका उपदेश किया था अतः इसका नाम माध्यन्दिनी पड़ा। वाजसनेयी संहिता भी इसे कहते हैं। क्योंकि वाजसनिके पुत्र याज्ञवल्क्यने भगवान् आदित्यसे प्राप्त किया था। इस संहिताके ४० अध्याय, ३०३ अनुवाक, १९७१ काण्डिकाएँ १९७६ (मतान्तरमें १९७९) मन्त्र, ८८८७९ अक्षर और २९६२९ शब्द हैं। प्रथमके पचीस अध्यायोंमें मन्त्र-संग्रह है। अन्तके पन्द्रह अध्याय

खिल प्रकाणके नामसे प्रसिद्ध हैं। सोलहवें अध्यायमें शतरुद्री, इकतीसवेंमें पुरुषसूक्त और चालीसवेंमें ईशावास्योपनिषद् है। वाजसनेयी संहिता पर उब्वट, माधव, आनन्दमड्ड, अनन्तदेव और महीधरके प्रख्यात भाष्य हैं। महीधरने उब्वट और माधवके भाष्य देखकर अपना भाष्य बनाना आरम्भमें लिखा है।

“प्रणम्य लक्ष्मो नृहरिं गणेशं,
भाष्यं विलोक्यौब्वटमाववीयम् ।
यजुर्मन्त्रानां विलिखामि चार्थं,
परोपकाराय निजेक्षणाय ॥”

अति प्रसिद्ध शतपथब्राह्मण दो प्रकारका है — १. माध्यन्दिन

शाखा सम्बन्धी और २. कण्व शाखा

माध्यन्दिन-शतपथ सम्बन्धी। पहलेका नाम माध्यन्दिन

ब्राह्मण *

शतपथ ब्राह्मण है। इसके नामसे ही

व्यक्त है कि शत = १०० पथ = अध्याय वाला यह ग्रन्थ है।

काण्ड = १४, प्रपाठक = ६८, श्लोक-संख्या २४००० अक्षर-

संख्या ७६८००० है। इसमें ऋचाएँ = १२०००, यजुः =

८००० और ४००० साम सजुहीत हैं। महाभाष्यके कथानकों

जैसे इसमें अनेक कथानक हैं; जिनके सहारे संहिताकी व्याख्या की

गई है। सीतागम आदि ऐतिहासिक नाम भी इसमें आते हैं।

* पदार्थ सम्बन्ध १८५५ ई० में बम्बईमें प्रकाशित था।

माव्यन्दिन शतपथ-विवरण

काण्ड-सङ्ख्या	काण्ड-संज्ञा	अध्याय	प्रपाठक	ब्राह्मण	कण्डिकाएँ
१	हविर्यज्ञ	९	७	३७	८३७
२	एकपदिका	६	९	२१	५४९
३	अध्वर	९	७	३७	८५९
४	ग्रहनाम	६	९	३९	६४८
५	सव	९	४	२५	४७१
६	उषामन्त्राण	८	५	२७	५३०
७	हस्तिवट	५	४	१२	३९८
८	चिति	७	४	२७	४३७
९	सञ्चिति	५	४	१५	४०२
१०	अग्निहोत्रस्य	६	४	३१	३६९
११	अध्याग्यायी	८	४	४२	४३७
१२	मयम	९	४	२९	४५९
१३	अश्वमेध	८	४	४३	४३२
१४	बृहदारण्यक	९	७	५०	७९६
योग=१४	१४	१००	६८	४३८	७६२४

बृहदारण्यक—उक्त शतपथका चैदर्या काण्ड बृहदारण्यक कहलाता है। इसके आगमिक-तीन अध्यायोंमें-प्रथम क्रियाकी चर्चा है तथा संहिताके कथागत उद्गृत हैं। शेष छः अध्यायोंमें बृहदारण्यकोपनिषद् है।

बृहदारण्यक उपनिषद्—बृहदारण्यकके अन्तिम छः अध्यायोंको बृहदारण्यक उपनिषद् कहते हैं। इस उपनिषद् पर

दो भाष्य मुद्रित हैं — एक द्विवेद गङ्ग संज्ञक गुजरातके नागर ब्राह्मणका जर्मन-मुद्रित ग्रन्थमें छपा है और दूसरा वामुदेव भगवत्पाद-रचित वैकुण्ठेश्वर कल्याण मुद्रणालय बम्बईसे मुद्रित हुआ है। इस पर शङ्कराचार्यादिके भाष्य नहीं हैं; अपि तु कण्व शतपथ ब्राह्मण — अन्तर्गत बृहदारण्यकोपनिषद् पर हैं। इसी प्रकार इस संहिताकी मन्त्रोपनिषद् (ईशावास्य) पर भर्तृप्रपञ्चादिकी व्याख्याएँ हैं; शङ्कराचार्यादिकी नहीं।

माध्यन्दिन-श्रौत सूत्र — शुक्ल यजुर्वेदके श्रौतसूत्रोंमें कात्यायन मुनि-प्रणीत श्रौतसूत्र ही सबसे प्रसिद्ध है। इसमें = २६ अध्याय हैं। आरम्भके अठारह अध्यायोंमें उमी क्रिया-कलाप पर विचार किया गया है; जिसका निरूपण शतपथके प्रथमिक नौ काण्डोंमें हुआ है। शेष अध्यायोंमें क्रमशः-सौत्रामणी, अश्वमेध, पुरुषमेध, पितृमेध, एकाह, अहोनि, सत्र, प्रायश्चित्त और प्रवर्ग पर विचार किया गया है। इस सूत्र ग्रन्थके अनेक भाष्यकार और वृत्तिकार हुए हैं। उनमें — यशोगोपी, पितृभूति कर्क भर्तृप्रज्ञ, श्री अनन्त, गङ्गाधर, गर्ग पद्मनाभ, मिश्र अमिशोत्री, याज्ञिकदेव, हरिहर महादेव और विद्याधरके नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

माध्यन्दिन-गृह्य सूत्र — कई गृह्यसूत्र ग्रन्थोंमें पारस्कर-रचित कातीय गृह्यसूत्र ही प्रामाणिक है। जिसका अध्ययन अध्यापन याज्ञिक विद्वानोंमें विशेषरूपसे पाया जाता है। इसमें काण्ड = ३ हैं। इसकी पद्धति वामुदेव पाण्डितकी निस्वी हुई है। सूत्रोंपर टीका जयगमने भी की है। शङ्कर गणपति (रामकृष्ण) की टीका तो

पाण्डित्य-पूर्ण है। याज्ञवल्क्य स्मृति आदि अनेक धर्म-ग्रन्थ इस गृह्यगूत्रके अनुयायी हैं।

शु० यजुर्वेद — प्रातिशाख्य — शुरु यजुर्वेदके प्रातिशाख्यसूत्र और उनकी अनुक्रमणा कात्यायन मुनि—प्रणीत है। इन प्रातिशाख्यके आठ अध्याय हैं। प्रथममें = सज्ञा और परिभाषा, द्वितीयमें = स्वर और उच्चारण-प्रणाली, तृतीय चतुर्थ और पंचममें = संन्यार, षष्ठमें = क्रियापदार्थका निर्णय तथा शेष अध्यायोंमें = क्रम नियम दिए गये हैं। उज्ज्वलने इस पर टीका रची है। अनुक्रमणीमें = पाँच अध्याय हैं।

(२) कण्व शाखा

कण्व महर्षि द्वारा प्रचरित शाखा का नाम कण्व शाखा है।

कण्व संहिता

यह कण्व महर्षि ऋग्वेदके मन्त्रद्वारा कण्वसे भिन्न, बंधयन्त्रके पुत्र और यज्ञ-बन्धुके शिष्य हैं। अपनी संहितामें

इन्होंने गुरुके पाठका कहीं-कहीं अनुसरण नहीं किया है। जैसे — मध्यदेनशास्त्री पुराणका उच्चारण 'पुराण' करते हैं परन्तु कण्व वैसा नहीं करते; अपितु ऋग्वेदियों जैसा ही उच्चारण करते हैं। "एष वः गुरुः राजा एष वः पात्राग्ने राजा" (कण्व सं० ११।११) — इस श्रुतिका पठ और-और संहिताओं में भिन्न-भिन्न है। अतः प्रतीत होता है कि महर्षि कण्व पुरु गच्छाट देशके रहनेवाले थे। इस संहितामें सत्र ४० अर्थात् हैं। जिनमें ३९ अध्याय अनेक प्रकारके कर्मोंका निरूपण करते हैं। अन्तिम अध्याय दस रिता प्रतिपादक वैशाखम्योपनिषद् है।

कण्व संहिताके अव्यायादि

अध्याय	अनुवाक	मन्त्र	अध्याय	अनुवाक	मन्त्र
१	१०	५०	२१	७	१०६
२	७	६०	२२	८	७१
३	९	७६	२३	६	६०
४	१०	४९	२४	२१	४७
५	१०	५५	२५	१०	६७
६	८	५०	२६	८	४४
७	२२	४०	२७	१५	४५
८	२२	३२	२८	१२	१४
९	७	४६	२९	६	५०
१०	६	४३	३०	४	४६
११	१०	४७	३१	७	५१
१२	७	८५	३२	६	८४
१३	७	११६	३३	२	४६
१४	७	६५	३४	४	२२
१५	९	३५	३५	४	५५
१६	७	८५	३६	१	२४
१७	८	६४	३७	३	२०
१८	७	८६	३८	७	२७
१९	९	४३	३९	९	१२
२०	५	४६	४०	१	१८
२०	१८७	११७३	२०	१४१	९१३

डॉन्ग काण्ड (W. caland) के मननुना डन शन
 परमें १०४ अयाय ४४६ ब्राह्मण
 ताणव-शनपथ ब्राह्मण और ५८६५ कण्डिकाएँ हैं। इसके
 पहले, पाँचव और चौदहवें काण्डके
 दो-दो भाग हैं। विश्व कोशकारने लिखा है कि अब तक इनके
 साठे तेरह काण्ड मिले हैं जिनमें अयाय = ८५ और ३६०
 ब्राह्मण तथा ४९६५ कण्डिकाएँ हैं। वस्तुतः इसका विवरण
 यह है—

काव्य शनपथका काण्डादि विभाग

कण्डाङ्क	कण्ड-नाम	अध्याय	ब्राह्मण	कण्टिकाएँ
१	एकपात्काण्ड	६	२५	३७६
२	हविर्यज्ञ काण्ड	८	३२	५३२
३	उद्धरि काण्ड	२	२२	१२४
४	अध्वर काण्ड	९	३६	६४९
५	ग्रहनान०	८	३८	९७४
६	वाजपेय०	२	७	७००
७	राजमूय०	५	१९	२८९
८	उपसम्प्राण०	८	२७	५११
९	हस्तिवट०	५	१६	२५७
१०	चिनि०	५	२०	२४३
११	साम्निचिति०	७	२०	४३७

१२	अग्निहस्य	६	२८	२८६
१३	अष्टाध्यायी०	८	३१	२४१
१४	मध्यम०	९	२८	३९२
१५	अश्वमेध०	८	४४	३०८
१६	प्रवर्ग्य काण्ड	२	७	१९२
१७	बृहदारण्यक०	६	४७	२९५
१७	१७	१०४	४३५	६८०६

काण्व-आरण्यक — काण्व शतपथ ब्राह्मणके अन्तिम ६ अध्याय बृहदारण्यक या बृहदारण्यक उपनिषद् कहे जाते हैं। यही वह उपनिषद् है जो कि भिन्न-भिन्न स्तावल्हम्बि, आचार्योंका एक बड़ा अखाड़ा है। इसके ६ अध्यायोंमें क्रमशः — ६, ६, ९, ६, १९, ५ ब्राह्मण हैं। सब ४७ ब्राह्मण है। प्रत्येक अध्याय-ब्राह्मण कई खण्डों या फण्डिकाओंमें विभक्त है।

इस बृहदारण्यक पर सायण-भाष्य भी चौखम्बा (बनारस) से मुद्रित हो चुका है। इस शाखाके सूत्रादि उक्त हैं।

यजुर्वेदकी छत्त शाखाओंका कुछ मुद्रित अवशेष

शङ्खलिखित-सू — आचार्य शङ्खलिखित द्वारा लिखा गया एक धर्मसूत्र है जिसे वाजसनेय शाखावाले भी पढ़ते हैं।

श्वेताश्वर शाखा — इस शाखाका केवल मन्त्रोपनिषद् श्वेताश्वत-के नामसे प्रख्यात है। इस शाखाके ढंग अन्न अत्रान या अनुपलब्धिके गर्भमें हैं।

मानव शाखा — चरण व्यूहमें मैत्रायणी शाखाके छः भेदोंमें एक मानव शाखा भी बताई गई है। इसका मानव श्रौतसूत्र तथा मानव गृह्यसूत्र अष्टांगक भाष्य-महित गायकवाड़ ओरिएण्टल लिब्रेरीमें छप चुका है।

वाराह शाखा — इसका वाराह श्रौतसूत्र लाहौरसे मुद्रित हो जा चुका है। वाराह गृह्यसूत्र भी मिलता है।

वैखानस शाखा — इस का केवल वैखानस कल्प मिलता है।

अपस्तम्ब, बोधायन, सत्यापाद, हिगण्येशी और भारद्वाज शाखाओंके भी कल्प देखे जाते हैं।

बाघूल — यह शाखा केरल देशमें प्रचलित थी। इसका भी कल्प सुलभ है।



३ — सामवेद

"सामानि यो वेद स वेद तत्त्वम्" (बृहदेयता ८।१३०)
 साम तो इयम्का सर्वस्व टहग; नभी तो भाग्यन्के
 यमोयन्नामेमें विशेष विमृति गिना गया—

कृष्ण और साम "वेदाना नामवेदोन्मि" (गीता १०।२०)।
 हूँ भी मुर्छाकी मधुर सप्त स्वर्ग-सदृश-
 काओंका एक मात्र रिकार्ड सन्वेद। किं यह एक अशोकिक

पुत्र भी है “सामवेद एव पुष्पम्” (छां० उ०-११।१।२)।
 वनमालीको और चाहिये क्या ? पत्रं पुष्पं ही तो माँगा करता है।
 अतः उपादेयताके विचारसे साम सबसे अधिक महत्त्व रखता है।
 और भी :—

“ऋचः साम रसः” (छां० उ० १।१।२) अर्थात्

ऋचाओंका रस है साम; सामके

ऋग् और साम विना ऋचाएँ नीरस हैं। अधिक क्या ?

पक्षि-स्वरोंमें भी सामकी मधुरताका स्वतः

देखती है साम-विहिणी ऋचा — “उभौ वाची वदति सामगा

इव” “उद्गातेव शकुने साम गायसि” (ऋ० २।४३।१,२)

अपने प्रणयी सामके उपासकों से भी कितना प्यार !!! उनकी

रक्षाका भार अपने निजी सैनिकोंको सौंप रही है — “यूयमुपिमवथ

सामविप्रम्” (ऋ० ९, ९४, १४) अर्थात् देवताओं ! मेरे साम मधु-

मधुप विप्रव्रतोंकी रक्षामें तुम कोई कसर न उठा रखें। भारतीय

पति-परायण। पत्नियों पति-रक्षाके लिए सूर्यादि महाप्रदोंको भी जहाँ-

का तहाँ स्तब्ध कर चुकी हैं। उनका सनातन आदर्श यही सती ऋचा

पत्नियों ही तो हैं। मुनि पति-पत्नीका मधुर संवाद — “अमोऽ

हमस्मि सा त्वं सामाहमस्मृत्युक्त्यं . . . ताविह सं भवाव प्रजामा

जनयायइ” (अथ० १।४।२।७१) अर्थात् साम कहता है — ऋचे !

मैं पति और तुम पत्नी; फिर मिटकर प्रजा-उत्पत्तिमें ब्रह्माका हाथ

क्यों न बटाएँ। अब वेदोंकी कक्षामें देखें सामका स्थान।

“पो अन्तर्मीणि” — इस धातुसे ‘मनिन्’ प्रत्यय करने से

साम शब्द बना। जिसका अर्थ हुआ — पाप-

साम शब्द और । नाशक। बृहदारण्यक ने और ही निर्णय-

उसका अर्थ जैली अपनाई है — “सा च अमश्चेति

तत्साम्न. मान्त्वम्” (वृ० उ० १।३।२२)

सा = ऋचा च = और अमः = स्वर — ये दोनों साम हैं। इससे

यह प्रतीत होता है कि गान और ऋन्मन्त्र मिलकर साम कहे

जाते हैं। परन्तु जैमिनि-सूत्र तो केवल गानको ही साम कहता

है — “गीतिषु सामाख्या” (जै० सू० २।१।३६)। अब इन

एक दोनों प्रमाणों पर ध्यान देनेसे विपत्ति दूर हो जायगी।

मीमांसक वैदिक जाति आदि धर्मोंमें ही शब्दकी शक्ति मानते हैं

बोध लक्षणा आदि वृत्तियोंसे धर्म और धर्मा दोनोंका हो सकता है।

अब सदैव लक्षणा ही गाया जाता है — “ऋच्यव्यूहं साम

गीयते” छा० (१।६।१)। अब साम शब्दकी शक्ति तो अनय-

लभ्य गान धर्ममें ही है, ऋक् शब्द — लभ्य ऋचा रूप धर्ममें नहीं;

बोध दोनोंका हो सकता है। इसलिए निश्चय हुआ कि शक्ति-

प्रसक्तो दृष्टिमें आते हुए जैमिनि स्पष्टि सूत्र तथा और बोध मार्ग

पर एक छा-दोष-वास्य असम्भव है। दोनोंमें कोई विरोध नहीं;

अस-मेव है।

साम संहिता और उसके प्रकार

सामग्रिकोका कहना है कि — ‘मान्ताति’ वह मन्त्र

नाम है। अन्तः. ‘मन्त्र — मन्त्रम एता’ होना चाहिये था। क्योंकि

ऋग्वेदमें उमका चिन्ह दोका अङ्क है — ‘या^२’ । अतः सामवेद का प्रथम मन्त्र जो कि ऊपर उदाहरत है, ऋग्वेदमें ऐसा लिखा है —

अ॒ग्न॒ आ या॑हि वी॒तये॑ गृ॒णानो॑ ह॒व्यदा॑तये ।

नि होता॑ स॒त्सि ब॒र्हिषि॑ । (ऋ० ६।१६।१०)

सामवेदमें उदात्त, अनु०त्त और स्वरितके चिन्ह दिखाए गये हैं और चौथा स्वर पिना चिन्हका होता है । इस प्रकार स्वर-चिन्ह विशिष्ट होने पर भी उदात्तादि स्वरोंका कोई भेद नहीं । छन्दोग्यमें इसी भाँसे कहा है — “या ऋत् तदेव साम” ॥ एक निश्चयता अवश्य रह जाती है कि सामवेदमें वही-कहीं वणों पर ‘र’, ‘क’ और ‘उ’ के चिह्न मिलते हैं । उनका रहस्य यह है — जब दो उदात्त एकत्र हो जाते हैं तब प्रथम उदात्तके ऊपर एका अङ्क लगता है; दूसरा बिना चिह्नके ही रहता है । परन्तु इस द्वितीय उदात्तसे परे स्वरित यदि हो तो उस स्वरित पर “रका-सहित दोका अङ्क लगेगा जैसे — ‘ता^{२२}’

२ अनुदात्तसे परे स्वरित पर भी ‘२२’ — यही चिन्ह रहेगा । किन्तु तब स्वरितके पूर्ण अनुदात्त पर ‘३क’ — यह चिन्ह लगेगा जैसे ‘तन्वा^{३क २२}’ (सा. १२)

३. जब दो उदात्त एकट्ठे हो जायें और उनसे परे यदि अनुदात्त हो । तब प्रथम उदात्त पर ‘२३’ — यह चिन्ह और दूसरा उदात्त चिह्न ‘२२’ रहेगा ।

२—गान संहिता

पहले ही कहा जा चुका है कि सामवेदमें उन ऋचाओंका संग्रह मात्र है जिन पर साम गाया जाता है। उन मन्त्रोंके ऊपर महर्षियोंने अनन्तमेद-भिन्न गान व्यक्त किए हैं। जो कि तत्स्र ऋषिके नामसे प्रसिद्ध हैं। और वे गाने किसी-किसी संहितामें छपे हैं।

लौकिक गान—साम गान तक पहुँचनेके लिए पहले लौकिक गानके स्वरों पर थोड़ा ध्यान दे लेना आवश्यक है।

सप्त स्वराख्यो ग्रामा, मूर्छनास्त्वेकविंशतिः ।
ताना एकोनपञ्चाशद्, इत्येतत्स्वरमण्डलम् ॥

यह नागदीय शिक्षा-वचन व्यक्त कर रहा है कि स्वर = ७, ग्राम = ३, मूर्छना = २१, तान = ४९ हैं। अधिक विस्तार न हो; अतः हम यहाँ केवल स्वरोंको लेते हैं। सात स्वरोंके नाम भी नागदीय शिक्षामें दिये हैं—

षड्जश्च ऋषभश्चैव, गान्धारो मध्यमस्तथा ।
पञ्चमो धैवतश्चैव, निषादः सप्तमः स्वरः ॥
(नागदीय० २।९)

अर्थात् षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद—ये स्वर हैं। इन स्वरोंके स्तोम वर्ण हैं—सा, रे, ग, म, प, ध, नि।

साम-गान — उक्त लौकिक गानसे साम गानमें पर्याप्त वैशिष्ट्य पाते हैं । प्रथम तो यहाँ उन षट्जादिकोंके नाम ही दिये हैं —

प्रथमश्च द्वितीयश्च, तृतीयोऽथ चतुर्थकः ।

मन्द्रः क्रुष्टो ह्यतिस्वार, एतान् कुर्वन्ति सामगा ॥

(नारदीय० १।१२)

अर्थात् प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र, क्रुष्ट तथा अतिस्वार — ये साम-गान करनेवालोंके अपने स्वर नाम हैं । फिर साम-गायकोंको गाना नहीं आता या क्या है ? इनके यहाँ सब लौकिक स्वर डग-उधर हो जाते हैं —

यः सामगानां प्रथमः, स वेणोर्मध्यमः स्वरः ।

यो द्वितीयस्स गान्धारः, तृतीयस्त्वृषभः स्मृतः ॥

चतुर्थः षड्ज इत्याहुः, पञ्चमो धैवतो भवेत् ।

षष्ठो निषादो विज्ञेयः, सप्तमः पञ्चमः स्मृतः ॥

मानोंका प्रथम = वेणुका मध्यम (४) म

„ द्वितीय = „ गान्धार (३) ग

„ तृतीय = „ त्वृषभ (२) रे

„ चतुर्थ = „ षड्ज (१) सा

„ पञ्चम = „ निषाद (७) नि

„ षष्ठ = „ धैवत (६) ध

„ सप्तम = „ पञ्चम (५) प

॥ अतिस्वार = „ पञ्चम (५) प

२—गान संहिता

पहले ही कहा जा चुका है कि सामवेदमें उन ऋचाओंका संग्रह मात्र है जिन पर साम गाया जाता है। उन मन्त्रोंके ऊपर महर्षियोंने अनन्तमेद-भिन्न गान व्यक्त किए हैं। जो कि तत्तद् ऋषिके नामसे प्रसिद्ध हैं। और वे गाने किसी-किसी संहितामें छपे हैं।

लौकिक गान—साम गान तक पहुँचनेके लिए पहले लौकिक गानके स्वरो पर थोड़ा ध्यान दे लेना आवश्यक है।

सप्त स्वरास्त्रयो ग्रामा, मूर्छनास्त्वेकविंशतिः ।
ताना एकोनपञ्चाशद्, इत्येतत्स्वरमण्डलम् ॥

यह नागदीय शिक्षा-वचन व्यक्त कर रहा है कि स्वर = ७, ग्राम = ३, मूर्छना = २१, तान = ४९ है। अबिक विस्तार न हो; अतः हम यहाँ केवल स्वरोको लेते हैं। सात स्वरोके नाम भी नागदीय शिक्षामें दिये हैं—

पठजदघ ऋषभश्चैव, गान्धारो मध्यमस्तथा ।
पञ्चमो धैवतश्चैव, निषादः सप्तमः स्वरः ॥

(नागदीय ० २।९)

अर्थात् पट, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, धैवत और निषाद—ये स्वर हैं। इन स्वरोके गानोंमें वर्ण हैं—सा, रे, ग, म, प, ध, नि।

साम-गान — उक्त लौकिक गानसे साम गानमें पर्याप्त वैलक्षण्य पाते हैं । प्रथम तो यहाँ उन षड्जादिकोंके नाम ही और हैं —

प्रथमश्च द्वितीयश्च, तृतीयोऽथ चतुर्थकः ।

मन्द्रः क्रुष्टो ह्यतिस्वार, एतान् कुर्वन्ति सामगाः ॥

(नारदीय० १।१२)

अर्थान् प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र, क्रुष्ट तथा अतिस्वार — ये साम-गान करनेवालोंके अपने स्वर नाम हैं । फिर साम-गायकोंको गाना नहीं आता या क्या है ? इनके यहाँ सब लौकिक स्वर डगर-उदर हो जाते हैं —

यः सामगानां प्रथमः, स वेणोर्मध्यमः स्वरः ।

यो द्वितीयस्स गान्धारः, तृतीयस्त्वृषभः स्मृतः ॥

चतुर्थः षड्ज इत्याहुः, पञ्चमो धैवतो भवेत् ।

षष्ठो निषादो विज्ञेयः, सप्तमः पञ्चमः स्मृतः ॥

सामगोका प्रथम = वेणुका मध्यम (४) म

„ द्वितीय = „ गान्धार (३) ग

„ तृतीय = „ रुपम (२) रे

„ चतुर्थ = „ षड्ज (१) सा

„ पञ्चम = „ निषाद (७) नि

„ षष्ठ = „ धैवत (६) ध

„ सप्तम = „ पञ्चम (५) प

„ अतिक्रुष्ट = „

स्वर-विस्तार नारदीय शिक्षा और बृहदेवताके अन्तिम श्लोकोमें देखाना चाहिए ।

अष्ट विकार—सम रागके साँचेमें ढालनेके लिए मन्त्र-वर्णोंमें किए जानेवाले पग्विर्तनोंके आठ कारण सोदाहरण निम्नांकित हैं ।

क्रमांक	निमित्त	लक्षण	उदाहरण
१	विकार	एक वर्णके स्थानमें दूसरा	अग्र = 'ओम्नायि ।'
२	विश्लेष	सन्धि-विच्छेद	वीतये = 'वो यतोया२यि'
३	विकर्षण	रन्ध्रा खींचना	ये = या १३ यि
४	अभ्यास	पुनः पुनः उच्चारण	तोया२यि, तोया२यि
५	विगम	एक पदके मध्यमें भी टहर जाना	गृणाना हव्यदातये = गृणा नो ह । ह्यदातये ।
६	स्तोभ+	निर्गन्ध वर्ण	औ हो वा, हाऊ, हाबु
७	आगम	अधिक वर्ण	वरेण्यम् = वरेणियोम्
८	छाप	मन्त्र-वर्णका अनुदाहरण	प्रचोदयात् = प्रचोऽ१२ऽ१२ दुम् । आ २ । दायो । आ ३४५ ।

+ ऋषो यदधिक विशिद्धं द्विरुक्तं वापि दृश्यते ।

स्तोभार्थं तस्य मन्यन्ते, वमशः शास्त्राच्यन्तकाः ॥

(स्तोभानु = परिशिष्ट १११९)

गानप्रिय महाशय हमारे प्रथम साम-मन्त्रका गीतम-परक मुने ।

सम विकार-उदाहरण एकत्र है —

ओ ग्नाडि । ओ या ही ऽ ३ । वो इ तो या ऽ
 रे इ । तोया ऽ रे इ । गृणानौह । व्यदोतो या ऽ रे इ ।
 तोया ऽ रे इ । नाइ होता सा ऽ रे इ । त्सा ऽ २ इ ।
 वा ऽ २३४ ओहोवा । ही ऽ २३४पी ॥ १ ॥

सामवेदकी शाखाएँ

पानञ्चल महाभाष्यमें लिखा है — “सहस्रवर्त्मामवेदः”
 अर्थात् समवेदकी एक हजार शाखाएँ हैं । मर्यादामार्ग का भी यही
 पक्ष है । फलतः हम होता गया । हास कागण पर प्रकाश डालते हुए
 चण्व्यूदमें श्रौतकने एक गाथा लिखी है — कुछ उनावले पढ़ैया
 पढ़ग आदि अनध्याय विधियोंमें भी साम पढ़ने लगे । क्रोधमें
 अकार इन्द्रने सत्र शाखाओंमें आग लगा दी । बहुतसी स्वाहा
 हो गई । केवल सोलहई बच रहीं — (१) आमुतायर्णय, (२)
 वामुतायगीय, (३) वार्तान्तवेय, (४) प्राञ्जल, (५) ऋषणभेद,
 (६) प्राचानयोग्य, (७) ज्ञान्योग्य, (८) गणायन, (९) शाश्वायन,

§ मुक्तिवोपनिषद्में सामवेदके १६ उपनिषद्ग्रन्थोंका उल्लेख भी
 १६ शाखाओंकी ओर संकेत करता है । परन्तु उपनिषदाक नाम शाखा
 नामाभि अत्यन्त विज्ञानीय है ।

(१०) सात्वल, (११) खल्वल, (१२) महाखल्वल, (१३) लङ्गल,
(१४) कौथुम, (१५) गौतम, (१६) जैमिनीय ।

इन्द्र-कोपसे १६ वर्चों तो काल-कोपमें तेरह पड़ गई ।
इस समय तीन ही शाखाएँ उपलब्ध हैं — कौथुम, राणायनाय और
जैमिनीय ।

(१) कौथुम-शाखा

यह वही संहिता है; जिसके मनोहरमन्त्रोंसे मगीरथने भगवती

गङ्गाको प्रसन्न कर लिया था । जो आज भी

*
कौथुम-संहिता

उसी प्रसन्नताके साथ अपने चिरातीत

ऐतिहासिक मधुर-गीत गा-गाकर भारतको

ही नहीं, विश्वको आनन्द-विभोर कर रही है । कौथुम-संहिताके
प्रचार-स्थल हैं — काशी, कन्नौज, शङ्ख और गुजरात । इसके
प्रधानतया दो भेद हैं — पूर्वार्चिक और उत्तरार्चिक । आरण्यका-
ध्याय पूर्वार्चिकका परिशिष्ट है और म्हाणानी-आर्चिक आरण्यका-
ध्यायका परिशिष्ट । कुछ विद्वान् आरण्यक-ध्यायको पूरी संहिताका
परिशिष्ट मानते हैं ।

* कुछ विद्वान् 'कौथुम' शब्दका मूल 'कौटुम' बताने हैं ।
क्योंकि इस संहिताके प्रातिशायकी मंजा कौटुम सूत्र, पुण्यसूत्र आदि
आती है । 'कौटुम' शब्दका कौथुम बनना कठिन नहीं । परन्तु दूसरे
विद्वान् 'कौथुम' नाम ही मौलिक मानते हैं; कौटुम नहीं ।

(१) पूर्वाचिक — एक ऋचागले १८१ सूक्तोंका सग्रह है। इसमें उत्तरचिक पठित सूक्तोंकी योनि* ऋचाएँ आनता है। केवल ६१ यानि ऋचाओंका पाठ पूर्वाचिकमें नहीं। इस कमीका कारण है — पूर्वाचिकमें सामयागके प्रातः मन्त्रीय गायत्र सामयी योनि ऋचाओंका अष्ट ६१ सूक्तों पर गायत्र साम गाया जाता है। इन सूक्तोंकी प्रथम प्रथम ऋचाएँ आठकर ऋषि सप्त साम योनि ऋचाएँ पूर्वाचिकमें पढ़ी गई हैं। पूर्वाचिकमें ६ प्रगठक हैं। प्रत्येक प्रगठकमें २ अर्ध प्रगठक हैं। दोनों अर्ध प्रगठकोंमें दस दशतियाँ आजाता है। परन्तु अन्तिम प्रगठकके अर्ध प्रगठकोंमें केवल नौ दशतियाँ हैं। प्रायः १० ऋचाओंकी एक दशति होती है। कुछ दशतियोंको इस नियमसे वञ्चित रहना पड़ा है।

प्रपाठकादि-विवरण

प्रपाठक	अर्धप्र०	दशति	विशेषता
१	२	१०	प्र-मार्धकी तृतीय द० में १४ ऋचाएँ, द्वितीयार्धकी प्रथम, तृतीय द० में ८, पञ्चमम ६, शेषमें १०, १० सप्त = ९६ ऋ०

* एक साम तीन ऋचायाँ पर गाया जाता है। प्रथम ऋचाको यानि ऋचा कहते हैं। क्योंकि वह एक नियत ऋचा है। साम — नामम उसी ऋचाकी प्रतीक होता है। जैसे — वारवन्तीय सामका "अन्व नत्वा वारवन्त" मित्यादि ऋचा नियत आधार है।

२	२	१०	प्रथमार्धकी द्वितीय द० में ८, द्वितीयार्धकी पञ्चम द० में ९, शेषमें १०, १० सब = ९७ ,,
३	२	१०	प्रथमार्धकी तृतीय द० में ९ शेषमें १०, १० सब योग = ९९ ,,
४	२	१०	प्रथमार्धकी चतुर्थ द० में ९, द्वितीयार्धकी द्वितीय द० में ८ और चतुर्थ द० में १६, सब = ९८ ,,
५	२	१०	प्रथमार्धकी प्रथम द० में ८ और चतुर्थ द० में ८, शेषमें १०, १० सब = ९६ ,,
६	२	९	प्रथमार्धकी द्वितीय द० में १४, तृतीय और पञ्चम में १२, १२; द्वितीयार्ध प्रथम में ९, द्वितीया- र्धकी द्वितीय द० में १२, तृतीय द० में १२ चतुर्थ में ८ सब = ९९ ,,

सम्पूर्ण योग ५८५

(२) उत्तरार्चिक — में ९ प्रगठक हैं । प्रथमके पाँच प्रगठको तक दो-दो अर्ध प्रगठक हैं; शेष चार प्रगठकोमें तीन-तीन अर्ध प्रगठक हैं । कुछ विद्वान् ११ प्रगठक मानते हैं और प्रत्येक प्रगठकमें दो-दो अर्ध प्रगठक । दोनों मन्त्रोंमें सब अर्ध

द्वितीय सोपान

प्रगाढक २२ ही होते हैं । अर्ध प्रगाढक खण्डोंमें विभक्त है ।
पूर्ण विग्रहण यह है —

प्रगाढक	अर्ध प्र०	गुण्ड माल्या	सूक्त-स०	टिप्पण
			२३	६२
१	प्रथम	६	२२	६२
	द्वितीय	६	१९	५५
२	प्रथम	६	१९	५६
	द्वितीय	७	२२	६९
३	प्रथम	७	२३	७६
	द्वितीय	६	२४	८३
४	प्रथम	७	१४	५५
	द्वितीय	९	२०	८०
५	प्रथम	१२	२३	९५
	द्वितीय	३	११	३२
६	प्रथम	३	२०	५६
	द्वितीय	६	१८	५४
	तृतीय	४	१६	४६
७	प्रथम	४	१४	३८
	द्वितीय	८	२१	४४
	तृतीय	४	१४	४०
८	प्रथम	४	१९	५४
	द्वितीय	५	१८	५४
	तृतीय	४	१८	५१
९	प्रथम	०	१३	३३
	द्वितीय	१	९	२७
	तृतीय			

९ प्रगाढक, २२ अर्ध, ख०=११९, सू०=४००, ऋ०=१२२५

उत्तरार्चिकते ४०० सूक्तोंमें १३ सूक्त एक-एक ऋचावाले, ६६ सूक्त दो-दो ऋचाओंवाले, २८७ सूक्त तीन-तीन ऋचाओंवाले, ९ सूक्त चार-चार ऋचाओंवाले, ४ सूक्त पाँच पाँच ऋचाओंवाले, १० सूक्त छः-छः ऋचाओंवाले, २ सूक्त सात-सात ऋचाओंवाले, १ सूक्त आठ ऋचाओंवाला, ३ सूक्त नौ-नौ ऋचाओंवाले, ३ सूक्त दस-दस ऋचाओंवाले और २ सूक्त बारह-बारह ऋचाओंवाले हैं। कुछ ग्रन्थोंमें दो सूक्तों और दो ऋचाओंकी घट-बढ़ भी देखी जाती है।

२-राणायनीय शाखा

सर्व-प्रथम १८४२ ई० में लण्डनसे स्टेवेन्सन (G. Stevenson) ने अंग्रेजी अनुवाद-सहित राणायनीयका प्रकाशन किया था।

राणायनीय संहिता

प्रकाशन किया था। भारतमें मुद्रण न होनेके कारण १९१६ ई० में एक भारतीय विद्वान्ने सत्यव्रत सामश्री-

मनकी आलोचना करते हुए लिख दिया था—“प्रनीत होता है सत्यव्रतने महीडासके लेख पर ही निर्भर कर तीन शाखोंका मिश्रण लिख दिया है। . . . यदि राणायनीय संहिता तथा जैमिनी शाखा संहिता, किसीके हों और वह छपना दे, तो बड़ा लाभ समझा जा सकता है।” इस लेखसे पूर्व केवल राणायनीय संहिता ही मुद्रित न हो चुकी थी; अब तु जैमिनीय संहिताका भी प्रकाशन कैथेण्ड (W. Caland) द्वारा हो जा चुका था। अब तो स्वाध्याप-

मण्डलसे कई उपयोगी सूचियोंवाली सामवेद संहिता छप चुकी है। जिसमें जैमिनीय संहिताका पाठ-भेद भी दिया हुआ है। और राणायनीयकी बात भी प्रस्तावनामें लिखी है — “वर्तते तावदेया सामसंहिता राणानीयाना कौथुमानां च। तयोर्मन्त्रभेदो नास्ति केवलं गणनापद्धतिभेद एव। एके प्रपाठक-अर्धप्रपाठक-दशभिः, अन्ये अध्यायैः खण्डैः मन्त्रान् गणयन्ति।” अर्थात् राणायनीय और कौथुमका कोई विशेष भेद नहीं; केवल गणना-पद्धतिका अन्तर है। एकमें प्रपाठकादिकी गिनती है और दूसरीमें अध्यायादिकी। कहीं-कहीं पाठ-भेद तथा उच्चारण-भेद भी है। जैसे कौथुमके ‘हाउ’ की जगह राणायनीयमें ‘हावु’ है। कौथुम शाखावाले ऋग्वेदियों जैसा ‘वाजेपु नो’ उच्चारण करते हैं किन्तु राणायनीय-शाखावाले ‘वाजेपु गो’ बोलते हैं। राणायनीयका प्रचार दक्षिण-प्रान्तमें है।

कौथुमीय और राणायनीयके ब्राह्मण

दोनों संहिताओंसे सम्बन्ध रखनेवाले ब्राह्मण आठ हैं —
(१) ताण्ड्य ब्राह्मण (पञ्चविंशः ब्रा०), (२) षड्विंश ब्राह्मणः,

५ २५ प्रपाठक होनेसे ही ‘षड्विंश’ इसका नाम है। यह दो भागोंमें सायण भाष्यसहित १८७५ ई० में छपा था।

§ के० हेम-प्रकाशित १८९३ ई० में

(३) मन्त्रब्राह्मण*, (४) सामविधान ब्राह्मण†, (५) दैवत ब्राह्मण†, (६) आर्षेय ब्राह्मण†, (७) संहितोपनिषद् ब्राह्मण†, (८) वंश ब्राह्मण† ।

ताण्ड्य महाब्राह्मण — (१) ताण्ड्यब्राह्मण, (२) षड्विंश ब्राह्मण, (३) मन्त्र ब्राह्मण और छान्दोग्य उपनिषद् — ये सब मिलकर ताण्ड्य महाब्राह्मण कहे जाते हैं । कुछ लोग ताण्ड्य ब्राह्मणको ही ताण्ड्य महाब्राह्मण कह देते हैं । ताण्ड्य ब्राह्मणमें २५ प्रपाठक, ३४७ खण्ड हैं । षड्विंशमें ५ प्रपाठक और पाँचोंमें क्रमशः ७, १०, १२, ७, १० खण्ड हैं । मन्त्रब्राह्मण दो प्रपाठकोंमें विभक्त है और दूनों प्रपाठकोंमें दो-दो खण्ड हैं । छान्दोग्य उपनिषद्के ८ प्रपाठक मिला कर सब ४० प्रपाठक होते हैं । अतः ताण्ड्य महाब्राह्मणमें ४० प्रपाठक हैं । षड्विंशका पञ्चम प्रपाठक अद्भुत कथाओंका संग्रहात्मक होनेसे अद्भुत ब्राह्मण कहलाता है ।

(४) सामविधान ब्राह्मण — इसमें अधिकारभुक्त और अशक्त व्यक्तियोंका शुद्धिके लिए कृच्छ्रादि प्रायश्चित्त और

* मृत्युव्रत समग्रमी १८९० ई०

† बर्नेल (A. C. Burnell) — सम्पादित सामविधान ब्रा० लण्डनमें १८७३ ई० में, वंश ब्रा० + दैवत ब्रा० १८७३ ई० में, आर्षेय ब्रा० १८७६ ई० में, संहिताप० ब्रा० १८७७ ई० में मंगलूरसे पहले निकला था ।

! प्रो० वेबर्ने जर्मन-अनुवादके साथ १८५८ ई० में बर्लिनमें प्राक-
शित किया ।

अग्न्याशन, अग्निगोत्रादि तथा साम सविधानोंका संग्रह है। यह तीन प्रपाठोंमें विभक्त है। प्रथम एवं द्वितीय प्रपाठक्रमें आठ-आठ खण्ड, तृतीयमें नौ खण्ड है।

(५) दैवत ब्राह्मण — तीन खण्डोंमें विभक्त है। प्रथम खण्डमें २६ कण्डिकाएँ, द्वितीयमें ११ और तृतीयमें २५ हैं। सत्र ६२ कण्डिकाएँ हैं।

(६) आर्षेय ब्राह्मण — तीन प्रपाठोंका है। क्रमशः प्रपाठोंमें २५, २५, २९ खण्ड हैं। सत्र खण्ड ८२ होते हैं। सामके ऋषि, गोत्र, छन्द, देवतादि विषय इसमें स्पष्ट प्रतिपादित हैं।

(७) संहितोपनिषद् ब्राह्मण — इसमें केवल एक प्रपाठक है; जिसमें ५ खण्ड हैं।

(८) वंश ब्राह्मण — सामवेदीय आचर्योकी वंश परम्पराका प्रतिपादक है। तीन खण्डोंमें बँटा है।

छान्दोग्य उपनिषद् — यद्यपि कौथुम शास्त्रा सम्बन्धी सभी ब्राह्मणग्रन्थोंमें छान्दोग्य ब्राह्मण कहते हैं। तथापि मन्त्रब्राह्मणकी विशिष्ट रूपसे छान्दोग्य ब्राह्मण कहा जाता है। इसी छान्दोग्य ब्राह्मणके अन्तिम आठ प्रपाठक (अध्याय) छान्दोग्य उपनिषद्के नामसे प्रसिद्ध है। ब्रह्म भावके प्रतिपादनमें इसका प्रधान स्थान है। कई आचार्योंके भाष्योंसे विमूर्षित है।

३-जैमिनीय शाखा

जैमिनीय संहिता — कर्नाटक प्रान्तमें विशेष प्रचलित है। लाहौरसे डाक्टर रघुवीर शर्मा-द्वारा स्वर-चिन्ह-रहित जैमिनीय संहिता प्रकाशित की जा चुकी है। अभी हालमें स्वाध्याय-मण्डलसे प्रकाशित सामवेदके अन्तमें इस संहिताका विशेष पाठ मात्र छपा है। यही विशेष पाठ महाशय कालेण्डने रोमन लिपिमें पहले प्रकाशित किया था। कालेण्ड-मतानुसार जैमिनीय संहिताकी मन्त्र-संख्या १६८७ है। अर्थात् पूर्वाचिक और आरण्यक — इन दोनोंमें ६४६, शेष १०४१ मन्त्र उत्तर्गाचिकमें हैं।

जैमिनीय ब्राह्मण — इसको तलवकार ब्राह्मण भी कहते हैं। क्योंकि जैमिनिके एक शिष्यका नाम तलवकार था। उदारचेता आचार्यने शिष्यका भी नाम स्वयं प्रसिद्ध किया होगा; या कि शिष्य ही अपने घोर भ्रम तथा गाढ़ानुगमके कारण आचार्यके समान माननीय बन गया होगा। जैमिनिके उपासक अवश्य तलवकारको भी साथ रखते हैं —

सामाखिलं सकलवेदगुरोर्मुनीन्द्रा-

द्वयासादवाप्य भुवि येन सहस्रशाखम् ।

व्यक्तं समस्तमपि सुन्दरगीतरागं,

तं जैमिनिं तलवकारगुरुं नमामि ॥

कुछ भी हो जैमिनीय ब्राह्मणका प्रचन तलवकारने भी असाधारणतया किया — यह मानना पड़ेगा। यह ब्राह्मण तीन

भागोंमें विभक्त है। तर्जनोंमें सत्र ११८२ गण्ड हैं। प्रथम भागमें ३६०, दूसरेमें ४३७ तथा तृतीयमें ३८५ खंड हैं।

जैमिनीय उपनिषद्—इसका ही नाम 'केन' उपनिषद् है। तत्त्वकार ब्राह्मणके अन्तर्गत होनेसे 'तत्त्वकार उपनिषद्' भी इसे कहते हैं। इसी उपनिषद्में अग्नि और इन्द्र आदि देवोंका गर्व चूर करनेके लिए यक्ष-रूपमें ब्रह्मका प्रकट होना बताया गया है। शङ्कराचार्यादि भारतीय विशिष्ट विद्वानोंके इस पर भाव्य मुद्रित हैं।

सामवेदके सूत्र-ग्रन्थ

साम सूत्रोंकी कमी नहीं। ज्ञात होता है कि और वेदोंकी अपेक्षा अपने वेद 'साम'को शरीरमें दुबला-पतला देखकर ब्राह्मण और सूत्र एक बड़ी भीड़ बनाकर दौड़ पड़े कि कहीं सामवेदका पलड़ा हल्का न रह जाय। अस्तु, श्रौत सूत्रोंके नाम पड़ें—माशक, लाट्यायन, द्राह्यायण, अनुपद, पुष्प (कुसुम) आदि।

माशक श्रौतसूत्र—पञ्चविंश ब्राह्मणके आधार पर रचा गया है। सूत्रोंका इसमें विशद विवेचन है। जनक सप्तगत्र-यज्ञकी भी इसमें चर्चा है। वरदराजने इस पर भाव्य किया है।

लाट्यायन श्रौतसूत्र—इसका भी अवलम्बन पञ्चविंश ब्राह्मण ही है। इसमें सोमयागके साधारण नियम, गङ्गाई और सूत्रोंकी पद्धतियाँ सुन्दर ढंगसे निरूपित हैं।

* सम्पादक आनन्दचन्द्रने अग्नि स्वामी—भाव्य—सहित १८७२ ई० में निकाला है।

द्राह्यायण श्रौतसूत्र* — राणायनीय शाखासे अपना सम्बन्ध रखता है। इसमें १० प्रपाठक हैं। वसिष्ठ सूत्र भी इसका नामान्तर है। माध्वस्वापीका इस-पर-भाष्य है।

अनुपद श्रौतसूत्र — पञ्चविंश ब्राह्मण और पड़विंश दोनोंसे सम्बन्ध रखता है। सामवेदकी ऐतिहासिक सामग्रीका यह एक कोश है।

कुसुम श्रौतसूत्र — कलमन्त्र रूपी कली किस प्रकार सामरूप पुष्प बन कर खिन्नी — यह बात इस ग्रन्थमें मोहक शब्दोंमें दी हुई है। यहाँ स्यात् कुसुम नामका निमित्त हो। गोभिल महर्षिकी कृति इसे बताते हैं। पर दक्षिणात्य विद्वान् वारुचिकी रचना मानकर 'कुसुमसूत्र' नाम रखते हैं।

निदानसूत्र — इसमें दस प्रपाठक हैं। इसमें उक्थादि गानकी पर्णलोचना, विभिन्न शाखाओं और वेदचार्योंकी चर्चा की गई है। सत्यव्रत शर्मा-द्वारा मुद्रित हो चुका है।

जैमिनि-श्रौतसूत्र — जैमिनि-ब्राह्मणका यह श्रौत सूत्र है।

सामवेदके गृह्यसूत्र

सामवेदीय गृह्यसूत्रोंमें प्रसिद्ध — गोभिल, खुदिर, पितृमेध, जैमिनीय तथा द्रह्यायण गृह्यसूत्र हैं।

गोभिल गृह्यसूत्र — कौथुम और राणायनीय दोनों

शास्त्राओंसे सम्पर्क रखता है। चार प्रपाठकोंमें विभक्त है। इसका परिशिष्ट कात्यायन-प्रणीत है। जिसका नाम है कर्म-प्रदीप। गोभिल गृह्यसूत्र १८८० ई० में म० म० चन्द्रकान्त तर्कालङ्कारने दो भागमें प्रकाशित किया था और गोभिल-परिशिष्ट १९०९ ई० में। सत्यव्रत सामश्रमीका गो० गृह्यसूत्र-वंगानुवाद भी कलकत्तासे छपा है।

खादिर गृह्यसूत्र—इस पर वामनकी श्लोकयुक्त व्याख्या है। सत्यनन्द स्वामीकी वृत्ति भी इस पर है। ब्राह्मण तथा खादिर दोनों एक ही ऋषिकी रचनाएँ हैं—ऐसा भी एकमत है।

पितृमेव गृह्यसूत्र—गौतम महर्षिका लिखा बनाया जाता है। इसके टीकाकार अनन्तज्ञानका मत है कि न्याय-सूत्र-कर्ता गौतम महर्षिसे पितृमेव-कर्ता गौतमका अभेद है। इसके सिवा गौतम गचिन एक गौतम-सूत्र भी है।

जैमिनि-गृह्यसूत्र—इसका प्रकाशन सर्व प्रथम १९०६ ई० में गास्ट्रा (D Gaastra) ने डचभाषामें किया तदनन्तर १९२२ ई० में कैलेण्ड (W Caland) ने उपयुक्त टिप्पणीके साथ देवनागरी लिपिमें किया। जैमिनीय ब्राह्मणसे इसका सम्बन्ध तो नामसे ही व्यक्त है। सामवेदका और भी सूक्ष्म साहित्य प्रकाशित हो चुका है। परन्तु उसका विचार अधिक समय और स्थानकी अपेक्षा करता है। स्थूलरूपसे सामवेदका यही परिचय है।



४. अथर्ववेद

लोकोपकारकी दृष्टिसे अथर्ववेदका वेद-पंक्तिमें उच्चतम स्थान है। जिसे बुल्लर (Buller), म्यूलर (Muller) के नामकी लम्बी-चौड़ी डोंगे हाँकनेवाले नये पागखी वेद ही नहीं मानते। यदि मानते भी हैं तो कलके कित्ती ईरानी जादूगरका बनाया हुआ कहते हैं। हमारे अपौरुषेयता तथा अनादिनताके समर्थक पण्डित-गण नाक-भों सिकोड़ देना ही पर्याप्त सम्झ लेते हैं। हाँ! कुछ विद्वान् प्रमाण वाक्य बोल देते हैं — “यज्ञैश्च वां प्रथमः पथस्ते” (ऋ० १।८३।५), “चत्वारि ऋज्ञा त्रयो अस्य पादाः” (ऋ० ४।५८।३) का व्याख्यान निरुक्त — “वेदा एवैते उक्ताः” (नि० परि० १।७), “ऋग्यजुः सामाथर्वाणश्चत्वारो वेदाः” (तापनीय० उ०)। “तत्रापरो ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः” (मुं० उ० १।१।५), “अथर्वाणं चतुर्थम्” (छान्दो० उ० ७।२।१), “ऋग्वेदो, यजुर्वेद, सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः” (बृह० उ० ४।१।२) आदि-आदि। आन्तरिक तथा बाह्य परीक्षणसे दूधका दूध और पानीका पानी हो सकता है। किन्तु परीक्षण क्रीड़ाके लिए देखनी विस्तृत प्राज्ञता चाहती है। यहाँ केवल निर्णयात्मक पहलू ही सामने खना है।

अथर्ववेदका अधिकार ज्ञान ध्यान तक ही सीमित नहीं; जादू-टोना, दवा-दारु, यन्त्र-मन्त्र भी सिखा देता है। अतएव

इसके अनेक नाम हैं—(१) अथर्ववेद, (२) वनवेद, (३) अथर्वाङ्गवेद, (४) मृगवद्भिगवेद, (५) क्षत्रवेद, (६) भेषज्यवेद आदि ।

(१) 'अथर्ववेद' नाम-निमित्त — गोपथ

ब्राह्मण इस विषयका विगारदीकरण एक गृहस्थमय कथाके द्वारा करता है* — कल्यारम्भमें व्ययम्भू ब्रह्मा अकेले थे । मनमें आई—'अपने समान दूसरा देव बना लूँ' । सङ्कल्प-मिदिके लिए ऐसा धेर तन किया कि एक एक रोम कूपसे पसीनेकी मोटी धारा बह चली । देखते देखते ब्रह्मपुत्र जैसा नद भर गया । ब्रह्माने ज्योंही अपना सुन्दर प्रतिमित्र उम जलमें देखा, त्यों ही तेज स्वलित होकर जलमें मित्र गया । तुल्य जल 'मधुर' और 'क्षार' दो भागोंमें विभक्त हो गया । मधुर जलसे 'भृगु' महर्षि उत्पन्न हो गये । ब्रह्माजी उसी जलमें छिप गये । भृगु बड़ी तत्परतासे अपने उत्पादकको खोजने लगे । उनकी ज्यप्रता देख किमीने आकाशवाणी की — "अथर्वद्वि-मेतास्वेनाप्स्वन्विच्छ" (गो० ब्रा० १।४) अर्थात् अब नीचेके इसी जलमें खोज । जलकी ओर देखते ही भृगु अथर्वा बन गये । अपने समान आकारवाले अथर्वाका ब्रह्माने देख, आज्ञा दी — 'प्रजाका उत्पादन तथा पालन करा' । अब अथर्वा प्रजापति बन गये और दम ऋषि पैदा कर दिए । दसोंने दस और बन ये । इन सब ऋषियोंसे दृष्ट मन्त्र समुदायका नाम अथर्वाङ्ग संहिता पड़ा ।

इस कथाका तात्पर्य योग साधनामें प्रतीत होता है। जिसकी ओर निरुक्तकाण्ठी भी गुप्त प्रेरणा है — “अथर्वाङ्गोऽथर्वणवन्तः । अथर्वतिश्चरति कर्मा तत्प्रतिपेयः” (नि० दे० ११।२। ७) अर्थात् ‘अथर्व’ धातुका अर्थ है — ‘चलना’ । इससे निम्न ‘अथर्व’ उड्डका भाव होता है — ‘न चलना’ = स्थिरता व स्थिरता योगि-प्राणोंमें होनी है । इस प्रकार प्राण-साधनाका प्रतिपादक होनेसे चतुर्वेद अथर्ववेदके नामसे प्रख्यात हुआ । प्राण-साधनाके लिए अथर्ववेदके दर्शनीय सूक्त हैं — २।२८; ९।२८, ३०; ७।४।९३; ८।१.२; ११।६ आदि ।

२. ‘ब्रह्मवेद’ — कतिपय विद्वान् इस नामकरणका कारण, ‘ब्रह्म’ नामक ऋत्विक्ता विशेष सम्बन्ध होना बताते हैं । अर्थात् जैसे — ‘गोता’ का ऋग्वेदमें ‘अध्वर्यु’ का यजुर्वेदसे, उद्गाताका सामवेदसे घनिष्ठ सम्बन्ध है; वैसे ‘ब्रह्मा’ का अथर्ववेदसे अति निकट सम्पर्क ब्रह्मणोंने स्थापित किया है — “प्रजापतिर्यज्ञमतनुत स ऋचैर होमकरोत्, यजुषःध्वर्यवम्, साम्नोद्गात्रम्, अथर्वाहिरोभिर्ब्रह्मत्वम्” (गोप० ब्रा० ३।२) ।

अन्य वैदिकमनीषी कहते हैं कि ‘ब्रह्मा’ का चारों वेदोंसे सम्पर्क है; न कि केवल अथर्ववेदसे । अतः उक्त नाम-करणमें ‘ब्रह्मा’ का सम्बन्ध निमित्त नहीं; अपितु ‘ब्रह्म-तत्त्व-प्रतिपादन’ है । स्वयं श्रुति स्फूर्तिरूपसे कहती है —

* “ब्रह्मा सर्वविद्यः सर्वं वेदितुमर्हति” (नि० १।८) ।

“ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव,
विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता ।
स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठा,
अथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह ॥”

(मु० उ० १।११।)

अर्थात् विश्व-स्रष्टा, भुवन-रक्षक समस्त देवोंके बाबा ब्रह्माजी पहले प्रकट हुए । उन्होंने अपने बड़े पुत्र अथर्वाको निखिल विद्याओंमें श्रेष्ठ ब्रह्म-विद्या पढ़ाई । अथर्ववेदके १।१; ४।१; ९।६; ९।९, १० आदि मूर्तोंमें ब्रह्म-विद्याका बहुत सुन्दर वर्णन है ।

३. अथर्वाङ्गिरोवेद — इस संज्ञाका प्रवृत्ति-निमित्त ओषधि-निरूपण है । क्योंकि अङ्ग = शरीरके रस = सस धातुका पोषक ओषधि-कोश इस वेदमें है —

“आथर्वणीराङ्गिरसी दैवी मनुष्यजा उत ।

ओषधयः प्रजायन्ते यदा त्वं प्राण जिन्वसि ॥”

(अथर्व० १।१।१६।१६)

ह प्राण ! वायो ! जब तुम (जिन्वसि) वर्षा करोगे; तब महर्षि अथर्वा और अङ्गिरा एवं देव, मनुष्योंसे आविष्कृत ओषधियाँ पैदा होंगी ।

४. मृग्वङ्गिरोवेद — इस नामका निमित्त गोपथब्राह्मण-प्रोक्त कथासे सूचित है; जिसकी चर्चा प्रथम नाम-निमित्त हो चुकी है ।

९. क्षत्रवेद — राज्य-रक्षण और युद्धादि रूप क्षात्र धर्मका निरूपक होनेसे अथर्ववेद क्षत्रवेदके नामसे भी पुकारा जाता है। अथर्वके क्षात्र धर्म-सूचक सूक्त हैं — १।२९; ३।३; ६।९७ आदि।

६. भैषज्यवेद — विविध औषधोंका प्रतिपादन ही इस नामका कारण है। अथर्ववेदमें भैषज्यके लिए द्रष्टव्य सूक्त — २।३; ४।४; ६।१६, २२, ५२, ८३, ९५; ७।५६ आदि हैं।

अथर्ववेदकी शाखाएँ

महर्षि पञ्चान्निके मतमें अथर्ववेदकी नौ शाखाएँ हैं — “नवधाथर्वणो वेदा” (महामा० पस्पशा०)। इन नौ शाखाओंके नाम विवाद-ग्रस्त हैं। सायणोद्दिष्ट नाम हैं — (१) पैप्पलादाः, (२) तौदाः, (३) मौदाः, (४) शौ-कीयाः, (५) जाजलाः, (६) जलदाः, (७) ब्रह्मन्दाः, (८) देवदर्शाः, (९) चारणवेशाः। मुक्तिकोपनिषद्में पन्द्रह शाखाएँ बताई हैं। परन्तु इस समय पैप्पलाद और शौनकीय दो ही प्राप्य हैं। उनमें भी पैप्पलाद-शाखा-संहिता मुद्रित नहीं। पण्डित भगवदत्तने लिखा है — एक प्रति पूना मण्डारकर इंस्टीट्यूटमें सुगन्धित* है”। महाशय आउफेल्ड

* Descriptive Catalogue of the Govt. Collection of Mss. Deccan College Poona, 1916, P-276-77.

(Theodor Aufrecht) ने भी अपना १८९६ ई० में प्रकाशित द्वितीयभाग सूचीके पृ० २ पर लिखा है— अथर्ववेद संहिता— Paippaladacakra. Bhau Daji 109. Stein^x 3 अर्थात् भाऊ दाजी-स्मरक पुस्तकालय (बम्बई) की तथा जम्बूकी सूचीमें पैप्पलादशाखा है ।

शौनकीय संहिता—मुद्रित है । उसे सबसे पहले हिटने (W. D. Whitney) महोदयने वर्लिनसे १८५६ ई० में प्रकाशित किया था । बम्बई आदिसे इसके कई संस्करण सायणभाष्य-संज्ञित निकल चुके हैं । अंग्रजीमें तो प्रथम-अनुवाद है ही; हिन्दीमें भी शेमकण्ठास त्रिवेदीने अनुवाद किया है । अभी हालमें पं० मातवल्लभने हिन्दीमें सुन्दर अथर्ववेदका सुबोध भाष्य निकाला है । हाँ ! इस स्वाध्यायके बहुतसे अर्थ सायणभाष्यमें मिल नहीं खाते । शौनकीय संहितामें २० काण्ड, ३६ (मतान्तरमें ३४) प्रपाठक, ७३० (मतान्तरमें ७६०) सूक्त, ५६७७ (मतान्तरमें ६०००, ५८४७) मन्त्र हैं ।

इस संहिताके लगभग १२०० मन्त्र ऋग्वेद-संहिताके विशेषतः प्रथम, अष्टम और दशम मण्डलमें पाये जाते हैं । बीच-बीच काण्डके प्रायः सम्प्र मन्त्र ऋग्वेदके ही हैं । कुछ लोग बीच-बीच काण्डको परिशिष्ट मानते हैं इस संहिताके एकसे तेरह काण्ड तक

x M. A. Stein—द्वारा सम्पादित महाराजा जम्बूकदमीरके रघुनाथ-मन्दिर-पुस्तकालयकी सूचिमें ।

विवर्धित विषय हैं। जैसे :— ईश्वर-प्रार्थना, प्रेत दिसे-रक्षा, जादू-टोना, सर्प सिंहादिसे-रक्षा, मन्त्रति-रक्षा, गन्धू-रक्षा, विशेष विशेष औषध, मारण, मोहन उच्छादन, वशीकरणादि प्रयोग, सर्व विष व्यवहार-साफल्यके उपाय, शान्ति आदि-आदि। चौदहवें काण्डमें विवाह पद्धति, पन्द्रहवेंमें अत्यात्म विद्या, सोलहवेंमें दुःख, दुःस्वप्नादि-मोचन-मन्त्र, सत्तरहवेंमें अभ्युदय-प्रार्थना, अठारहवेंमें पितृमेघ, उन्नीसवेंमें यज्ञ, जल, अग्नि, राजा, नक्षत्र, शान्ति — सम्बन्ध मन्त्र और बीसवेंमें इन्द्र-सूक्त हैं।

अथर्ववेदके उपवेद

चरणच्यूहमें प्रत्येक वेदका एक उपवेद बताया है — “तत्र वेदानामुपवेदाश्चत्वारो भवन्ति। ऋग्वेदस्यायुर्वेद उपवेदो, यजुर्वेदस्य धनुर्वेद उपवेदः, सामवेदस्य गान्धर्ववेदो, अथर्ववेदस्यार्थशास्त्रं चेत्याह मगवान् व्यासः” (खं० ४)। अर्थात् चारों वेदोंके चार उपवेद होते हैं — ऋग्वेदका ‘आयुर्वेद’, यजुर्वेदका ‘धनुर्वेद’, सामवेदका ‘गान्धर्ववेद’ और अथर्ववेदका ‘अर्थशास्त्र’ उपवेद है। परन्तु मुथुनादि, आयुर्वेदको अथर्ववेदका उपवेद बताते हैं — “इह खलु आयुर्वेदो नाम यदुपाङ्ग-मथर्ववेदस्य” (मुथुतसूत्रस्थान, १ अध्याय)। गोपथ ब्राह्मण अथर्ववेदके पाँच उपवेद कहता है — “पञ्चवेदान्निरमिमीत सर्पवेदं, पिशाचवेदम्, अमुग्वेदम्, इतिहासवेदं चेति” (गो० १।१०) इनमेंसे केवल इतिहासपुराण ही शेष है।

अथर्ववेदका ब्राह्मण

‘गोपथ ब्राह्मण’ अथर्ववेदका प्रसिद्ध ब्राह्मण है। पूर्व और उत्तर दो भागोंमें विभक्त है। पूर्वभागमें ९ प्रपाठक तथा उत्तर भागमें ६ प्रपाठक हैं। आथर्वण चणव्यूहसे प्रमाणित होता है कि गोपथमें कभी १०० प्रपाठक थे — “तत्र गोपथः शतप्रपाठकं ब्राह्मणमासीत्। तस्यावशिष्टे द्वे ब्राह्मणे पूर्वमुत्तरं चेति” (४।९)। अर्थात् गोपथ पहले १०० प्रपाठकोंका ब्राह्मण था। अब पूर्व और उत्तर दो ही ब्राह्मण शेष हैं। संहिता-मन्त्रोंकी व्याख्यारूप गाथाएँ इसमें अधिक आती हैं। विगाशा-तीर-वर्ति गमणीय वसिष्ठा-धर्मका सुन्दर वर्णन है। व्याकरण महाभाष्यका प्रसिद्ध लोक — सदशं त्रिषु लिङ्गेषु, सर्वांस्तु च विभक्तिषु। वचनेषु च सर्वेषु, यन्नञ्येति तदव्ययम् ॥ (व्या. महा. भा. १।१।२८) इस ब्राह्मणके पूर्वभाग १।२६में मिलता है। इस ब्राह्मणका सम्पादन - बड़ी योग्यतासे गास्ट्रा (D. Gastra) महोदयने ‘लेडन’ नगरमें १९१९ ई० में किया था। उससे भी पहले हरचन्द्रविद्या भूषणने १८७० ई० में कलकतासे प्रकाशित किया था। क्षेत्रकरण त्रिवेदीका हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित है।

अथर्ववेदीय उपनिषद्

मुक्तिकोपनिषद्में ३१ उपनिषद् परिगणित हैं। उनमें प्रसिद्ध ‘प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तृसिंहापिनी’—ये चार हैं। इनके उद्घरण ब्रह्मसूत्रमें अधिक आते हैं। माण्डूक्यकी गणना कुछ विद्वान्,

अथर्व — उपनिषदोंमें नहीं करते । पैपलादोपनिषद्+ भी आउमंस्व-सूची में है ।

अथर्ववेदके सूत्रग्रन्थ

गोपथ ब्राह्मणके आधार पर पाँच सूत्रग्रन्थ बने हैं —
(१) कौशिक (महिता-विधि) सूत्र, (२) वेतानसूत्र, (३) नक्षत्र कल्पसूत्र, (४) अङ्गिरस कल्पसूत्र, (५) शान्ति कल्पसूत्र ।

१. कौशिकसूत्र — दर्श-र्णमःस-विधि, मेघा-वर्धन, ब्रह्मचर्य, ग्रम-र्ग गन्तादि गृहण, ऐहिक पारलौकिक फल-सम्पादन प्रकार, ऐकमत्यादि विषय कौशिकसूत्रमें वर्णित हैं । सन् १८९० में ब्लूमफ़िल्ड (M. Bloomfield) ने जर्मनीसे प्रकाशित किया था ।

२. वेतान सूत्र — इसमें होता व्रत्ता, ब्राह्मणाच्छेसी, अग्नीध्र — इन चारोंके श्रमनान्त कर्म-कर्तव्य उपदिष्ट हैं । इसके दो संस्करण जर्मनीसे निकले हैं — एक गार्बे (R. Garbe) — द्वारा सम्पादित उपयोगी सूचि और टिप्पणी-बहित १८७८ ई० में और दूसरा कालण्ड (W. Caland) का जर्मन अनुवाद ।

३. नक्षत्र कल्पसूत्र — नक्षत्र-पूजन, महाशान्ति, नैवेदनकर्मादिका निरूपक है ।

४. अद्विरस कल्पमें — अभि चार (शैवधादि) कर्म — प्रयोग के समय कर्ता और कारयिताकी आत्म-रक्षा सरणी वर्णित है ।

९. शान्ति कल्पसूत्र — इसमें ग्रह उपद्रव शान्तिका विधि-विधान है ।

अथर्व वेदके परिशिष्टादि

अथर्ववेदके ७०-७४ छोटे छोटे परिशिष्ट हैं, जिनमें अथर्ववेदोक्त विविध मंत्र, शकुल, टोटके, यत्रादिका वर्णन है । इनका सम्पादन जर्मनीमें वालिंग और नेगेलेन (G M Bolling and I V Negelein) ने १९१० ई० में किया है । इनके अतिरिक्त 'बृहत् सर्वानुक्रमणिका*' और चाणव्यूह, अथर्ववेद प्रातिशाख्य पञ्चपटलिकादि ग्रन्थ मुद्रित हैं; जिनसे अथर्ववेदके विषय जाने जाते हैं । अथर्ववेदका यहा स्वल्प परिचय है । अन्तमें कुछ उपलब्ध शाखाओंका साहित्य विवरण (जिनसे ज्ञात होगा कि किस शाखाका कौन-कौन उपलब्ध है) देकर द्वितीय सोपानको समाप्त करते हैं —

* 'बृहत्सर्वानुक्रमणी' — सम्पादक — रामगोपाल शा० और प० भगवदत्त । सन् १९२२

x क-अथर्ववेद प्रातिशाख्य — सम्पादक — Whitney विल्ल भाष्य अथर्व० अनुवाद — सहित ।

स-V B Shastri

+ पञ्चपटलिका (अथर्ववेद तृतीय लक्षण ग्रन्थ) — सम्पादक प०

भगवदत्त ।

उपलब्ध शाखा-साहित्य

शाखा	वेद	संहिता	ब्राह्मण	आरण्यक	उपनिषद्	श्रौतसूत्र	गृह्यसूत्र
१. शाकल०	ऋग्वेद	शाकल०	कौपीतिकि०	कौपी०	कौ०	—	—
२. अश्वलायन०	"	—	ऐतरेय०	—	ऐतरेय	अश्वला०	अश्वल०
३. शांखायन०	"	—	शांखायन०	शाखायन०	शां०	शांखायन०	शांखा०
४. बाष्कल०	"	बाष्कल०	—	—	—	—	—
५. कठ०	यजुर्वेद	कठक०	—	—	कठ०	—	कठक०
६. मैत्रायणी०	"	मैत्रायणी	—	—	मैत्रायणी	—	—
७. मानव	"	—	—	—	—	मानव०	मानव०
८. वाराह०	"	—	—	—	—	—	वाराह०
९. तैत्तिरीय (आपस्तम्ब०)	तैत्तिरीय०	तैत्तिरीय०	तैत्तिरीय०	तैत्तिरीय०	तैत्ति०	आपस्तम्ब०	आप०
१०. बौधायन०	"	—	—	—	—	बौधायन०	बौधा०
११. हिरण्यकेशीय०	"	—	—	—	—	हिरण्यकेशी०	हिरण्य०

१२. भारद्वाज०	॥	वातसनेयी०	मध्य० शतपथ०	मा० बृहदारण्यक बृ०, ईश०	भारद्वाज०	पागडा०
१३. गार्ग्यन्दिन०	॥					
१४. कण्व०	॥	कण्व०	कण्वशतपथ०	कण्वबृहदारण्यक बृ०, ईश०	वैखानस०	वैखा०
१५. वैशम्पय०	॥					
१६. यमिष्ठकठ०	॥	कपिलबट०				गो० भि
१७. कौथुम०	॥	सामेद०	कौथुम०	ताण्ड्यम्ह०, साम आ ण्यक	छान्दोग्य	लाट्या०
१८. राणापनीय०	॥		राणापनीय०	॥	केन०	खादिर०
१९. जैमिनीय०	॥		जैमिनीय०	॥	ऐमि०	जैमि०
२०. देवालाड०	॥	अथर्ववेद	पेण्डार	॥	पेण्डार	॥
२१. शौनक	॥	शौनक		गोपथ	मु०, मा०, प्रश्नाद०	वैतान० कौशिक०





तृतीय सोपान

मंत्र-शिक्षा

(१) मन्त्रो गुरुः

१ — यो नो अग्ने अररिवाँ

अघायुररातीवा मर्चयति द्वयेन ।

मन्त्रो गुरुः पुनरस्तु सो अस्मा

अनु मृक्षीष्ट तन्वं द्विरुक्तै ॥ (ऋ० १।१४७।४)

अर्थ — (अग्ने) हे अग्निरूप परमात्मन् ! (यो अररिवान्)

जो दान धर्मका कट्टर विरोधो, (अगतीवा) स्वयं अ-दानी,
(अघायुः) पापाचार पुरुष (द्वयेन) मन, घाणी-दोनोंसे (नः
मर्चयति) हमें फोसता, अपमानित करता रहता है । (मन्त्रः)
भगवान् वेद (अस्ते) उस पापकर्मी मनुष्यका (गुरुः अस्तु)
शिक्षक = सुमति-दाता हो । (म पुनः) और वह पापिष्ठ पुरुष
(द्विरुक्तैः) सत्पुरुषोंकी कटूक्तियोंसे कुमार्ग त्याग कर (तन्वम्)
अपने दूषित शरीरको अधमपण-जपादि-द्वारा (अनुमृक्षीष्ट)
शुद्ध कर ले ।

(२) स्वस्ति पथ-कामना

२ — स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव ।

पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि ॥

(ऋ० १।११।११९) .

अर्थ — हे ईश ! हम (सूर्याचन्द्रमसाविव) सूर्य चन्द्रकी
मौति (स्वस्ति पन्थाम्) कल्याण-पथ पर (अनुचरेम) अग्रसः हों।
और (पुन ददता) अनन्त दानशील, (अग्रता) अहिंसक तथा
(जानता) सर्वा-तर्यामी सर्वज्ञस्वरूप तेरे साथ (सगमेमहि)
निरन्तर जुड़े रहें।

३ — अग्ने नय सुपथा राये अस्मा-
न्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
सुयोव्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठा
ते नमउक्ति विधेम ॥ (ऋ० १।१८९।१)

अर्थ — (अग्न) हे सर्वाध्रणी परमेश्वर ! (अस्मान्) हम
समौशो (राय) ऐहिक पथ पारलौकिक सम्पत् प्राप्त करानेके
लिए (सुपथा) सुपथ पर (नय) चला। (वय) हे देवाधिदेव !
तू हमारे (विश्वानि) समस्त (वयुनानि विद्वान्) सद्गुणों और
धर्मगुणोंका जानकार है। (अस्मन्) हमसे (जुहुराणम् एन)
अनिष्टकारि पाप पुत्रको (भूयिष्ठा) दूर कर। हम (त) तेरी
(भूयिष्ठाम्) बहुत धनी (नमउक्तिम्) स्तुति (विधेम) करते हैं।

४ — सुशामाणं पृथिवी द्यामनेहसं
सुशामाणमदिति सुप्रणीतिम्।
दैवी नामं स्वरिनामनागसमस्र-
वन्तीमा रुद्रेमा स्वस्तये ॥ (ऋ० १०।६३।१०)

अर्थ — (सुशामाणम्) संसार पापघारसे पार करनेवाली
(पृथिवीम्) पृथिवी जैसी लम्बी चौड़ी, (द्याम्) प्रकाशयती,
(भगवन्) निमल, (सुशामाणम्) सुश-साधनोंसे भरपूर, (अदितिम्)

अग्न्यिहृत, (सुप्रणीतिम्) सुसंघटित, (स्वस्त्रिान्) हृद्गु डौडौवाली,
(अनागमम्) निरिच्छद्गु, (अस्वन्तीम्) न चूनेवाली (देवी नागम्)
दिव्य नौका पर (स्वस्तये) परम पद प्राप्त करनेके लिए
(आरुहेम) हम चढ़ते हैं ।

(३) श्रद्धा

१—श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यन्दिनं परि ।

श्रद्धां सूर्यस्य निष्पुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः ॥

(ऋ० १०।१९।१९)

अर्थ—हम (श्रद्धाम्) श्रद्धादेवीको (प्रातः मध्यन्दिनं) प्रातः
मध्याह्न और (मध्यस्य निष्पुचि) साय (हवामहे) आवाहन करते
हैं—(श्रद्धे) हे श्रद्धे ! (ऋ) वेदों तथा वैदिक कर्मोंका
(नः श्रद्धाय) हमें श्रद्धालु बना ।

(४) ब्रह्मचर्य—महिमा

१—ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति ।

आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते ॥

(अथर्व० ११।७।१७)

अर्थ—(ब्रह्मचर्येण तपसा) ब्रह्मचर्य* रूपी तपःद्वारा
(राजा राष्ट्रं विरक्षति) राजा राष्ट्रकी मृत्यु रक्षा करता है ।
(ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्यके प्रमाणसे ही ब्रह्मचारी (आचार्यः)
आचार्य बनकर अन्य ब्रह्मचारियोंके अपनी शरणमें आनेकी
इच्छा करता है । अर्थात् ब्रह्मचर्य-नियमोंमें स्थित आचार्यका
ही हितकर आग्रिण्य ब्रह्मचारियोंको कचता है ।

* "ब्रह्म=वेदमन्त्राध्ययनार्थं चर्यं ब्रह्मचारिणमिच्छते" इति
कर्म—ब्रह्मचर्यम्" (गाय०) -

७—ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाव्रत ।

इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत् ॥

(अथर्व० ११।७।१९)

अर्थ — (ब्रह्मचर्येण तपसा) ब्रह्मचर्य-तपका ही प्रभाव है — कि (देवाः) देव (मृत्युमुपाव्रत) मृत्युको मार, अमर बन गये । (इन्द्रो ह) देव-राज इन्द्र भी (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य-साधन से ही (देवेभ्यः) देवोंके लिए (स्वराभरत्) स्वर्गका रक्षण करता है ।

(५) ऋणोद्धार

८—अनृणा अस्मिन्ननृणाः परस्मिन्

तृतीये लोके अनृणाः स्याम ।

ये देवयानाः पितृयाणाञ्च लोकाः

सर्वान् पथो अनृणा आ क्षियेम ॥

(अथर्व० ६।११।७।३)

अर्थ — हे ईश ! हम (अग्निन् लोके अनृणा) इस लोकमें ऋणी न रहें, (परस्मिन् अनृणाः) परलोकमें भी ऋण-मुक्त हों और (तृतीये लोके अनृणाः स्याम) नाक-पृष्ठादि तृतीय लोकमें भी ऋण-रहित हों । (ये देवयानाः पितृयाणाञ्च लोकाः) जो देव-यान और पितृ-यान के लोक हैं, (सर्वान् पथः अनृणाः आ क्षियेम) उन सब लोकोंमें अनृण होकर हम निर्याम करें । यहाँ लौकिक वैदिक — दोनों ऋणोंसे मुक्त होनेकी प्रार्थना है । लौकिक ऋण प्रसिद्ध ही है । वैदिक ऋण तीन हैं — 'ऋषि-ऋण,' 'देव-ऋण,' 'पितृ-ऋण' । स्वाध्याय से 'ऋषि-ऋण,'

अर्थ — (अग्निना) हे अश्विदेवो ! (भ्रातृन् नः स्वेभिः) हमारा एकमत्य स्वजनोके साथ (संत्रानम् अरणेभिः+) परजनोके साथ तथा (अस्माद्यु) हमारे इस परिवारमें (युवं नियच्छतम्) आप सदा घनाये रहें ।

१४ — प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु ।

प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्रे उतार्ये ॥

(अथर्व० १९।६२।१)

अर्थ — हे प्रभो ! (प्रियं मा कृणु देवेषु) मुझे देवोंका कृपा-पात्र बना, (प्रियं सर्वस्य पश्यतः) सब तत्त्वदर्शी ब्राह्मणोंका प्रेमी बना । (उत शूद्रे उत उतार्ये) क्या शूद्र? क्या वैश्य? सब प्राणियोंमें मेरा अनन्य प्रेम बढ़ा ।

(७) मधुर जीवन

१५ — सहृदयं सांमनस्यमद्वेषं कृणोमि वः ।

अन्यो अन्यमभि हृतं वत्सं जातमिवाग्नया ॥

(अथर्व० ३।३०।१)

अर्थ — सहृदय-जीवन-पथके पथिको ! (वः सहृदयं सांमनस्यमद्वेषं कृणोमि) मैं तुम्हारा जीवन सहृदयता, सहानुभूति और निर्यरता पर अवलम्बित करता हूँ । तुम सब (अन्योऽन्यम् अभिहृतं) परस्पर यह प्रेम अपनाओ (अग्नया जातं वत्सम् इव) जो प्रेम गो का अपने नव-जात बछड़े पर होता है ।

+ अरणः = न रण. = शब्दप्रमाण यस्य सोऽवैदिकः परः ।

१. "हयं गतिक्रान्त्याः" ध्वा० परमै० । २. न हन्यते इत्यप्रपाङ्गोः ।

१६ — अनुव्रतः पितुः पुत्रो माता भवतु समनाः ।

जाया पत्ये मधुमती वाचं वदतु शान्तिवाम् ॥

(अथर्व० ३।३०।२)

अर्थ — (पुत्र पितु अनुव्रत) पुत्र पिताका आज्ञाकारी हो (माता समना भवतु) और माताके साथ एक-मत । (जाया पत्ये) पत्नी पतिसे (मधुमती शान्तिवा" वाच वदतु) मधुमय शीतल वाणी बोले ।

१७ — मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा ।

सम्यञ्चः सत्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ॥

(अथर्व० ३।३०।३)

अर्थ — (मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्) न भाई, भाईसे द्वेष करे (उत मा स्वसा स्वसारम्) और न सहन, सहनसे । भाइयो तथा सहनो । तुम सत्र (सम्यञ्च" सत्रता भूत्वा) एक-मत और एक-मत हो (भद्रया वाच वदत) परस्पर भद्र वाणीका प्रयोग करो ।

१८ — येन देवा न विपन्ति नो च विद्विषते मिथः ।

तत्कृण्वो ब्रह्म वो गृहे सजानं पुरुषेभ्यः ॥

(अथर्व० ३।३०।४)

अर्थ — (येन) जिस देवकी विचारके प्रभावसे (देवा न विपन्ति) देवताओंमें न विरोध रहता है और (नो विद्विषते)

१ "इहो अश्विनम्" — इति इमंशदान् तिप्रत्यय, तना मापयो वा ।

२ सूर्यार्द्र आश्विन "अश्विनम्" — इत्यादिना वि०, "राम गमी" ति मन्त्रादौ ।

३ "द्विष आश्विनौ" अर्थात्, उभय०

नियः) न पारस्परिक द्वेषः । (तत् संज्ञानं ब्रह्म) उसी एकताके शिक्षक वेदको (वः गृहे पुरुषेभ्यः कृष्णः) तुम्हारे घरमें सब पुरुषोंको एकता-सूत्रमें बाँधनेके लिए हम नियत करते हैं।

१९—ज्यायस्वन्तदिचित्तिनो मा वि

यौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः ।

अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त

एत सत्रोचीनान् वः समनसस्कृणोमि ॥

(अथर्व० ३।३०९)

अर्थ—(ज्यायस्वन्तः) बड़े-छोटेकी मर्यादा पालते हुए (चित्तिनः) उदारचेता बन कर (संराधयन्तः) पारस्परिक कार्य-साधन करते हुए (सधुराः चरन्तः) कन्धे-से-कन्धा मिड़ाए चले चलो (मा वियौष्ट*) साधयान् ! कहीं बिछुड़ न जाना । (अन्यो अन्यस्मै) एक दूसरे से (वल्गु वदन्तः) प्रेमालाप करते हुए (एत) यदे चलो । मैं भी (वः) तुम्हें (सत्रोचीनान्) एक पय पर चलाता और (समनसः कृणोमि) तुम्हारे मनोंको मिलाता हूँ ।

२०—जिह्वाया अग्रे मधु मे जिह्वामूले मधूलकम् ।

ममेदह क्रतावसो मम चित्तमुपायसि ॥

२१—मधुमन्मे निक्रमणं मधुमन्मे परायणम् ।

वाचीं वदामि मधुमन् मे मूयासं मेधु संदृशः ॥

(अथर्व० १।१४।२, ३)

१ “इवि द्विसाक्षरयोश्च” । “विन्दित्प्रयोर च” इत्यन्तोऽन्तो-
देश उपन्यस्यत । “सोमं वान्दितरस्यो म्याः” इति उपरंक्षः ।

* “यु मिथ्यामिथ्यायो” सिद्धमान् मादि मुदि मय्यमवदुवन्ते
अयम् । इतिमावन्त्यन्तसुः ।

अर्थ—हे मधुरते ! (जिह्वाया अग्रे मधु) मेरे जिह्वाग्र
में तू मधु और (मे जिह्वामूले मधूलक्षम्) मेरी जिह्वाके मूलमें
रसाल-रस बनजा । (मम इदं अहं कर्तौ अमः) मेरे जीवन-
व्यवहारमें समा जा और (मम धित्तमुपायसि) मेरे मनमें
सदा निवास कर; जिससे (मधुमन्मे निरुक्मण मधुमन्मे परायणम्)
मेरी प्रवृत्ति और निवृत्ति मधुर बन जाय । (वाचा मधुमदं वेदामि)
घाणीसे मधुर बोलूँ तथा (भूयासे मधुमदसः) बन जाऊँ मधु-
संदर्शी ।

२२ — समानी प्रपा सह वोऽन्नेभार्गः

समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि ।

सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा

नाभिमिवाभितः ॥ (अथर्व० ३।३०।६)

अर्थ—एक परिवारके सदस्यो ! (व०) तुम्हारी (समानी
प्रपा) एक ही पानीय शाला और (सह अन्नभार्गः) एक ही
रसोई हो । मैं (व समाने योक्त्रे सह युनज्मि) तुम सबको एक
ही स्नेह-यन्त्रणमें बाँधता हूँ । (अग्नौ नाभिम् अभित इव) जैसे
एक ही चक्र-नाभि में बहुत-से अरे जुड़े रहते हैं; वैसे ही
(सम्यञ्चः) सब मिले-मिलाप (अग्निं सपर्यतारा) प्रभुकी पूजा
करो ।

२३ — सवीचीनान् वः समनसंस्कृणोम्ये

कदनुष्टीन्त्संवननेन सर्वान् ।

देवा इवायुतं रक्षमाणाः सायंप्रातः

सौमनसो वो अस्तु ॥ (अथर्व० ३।३०।७)

अर्थ—(सवननेन) सच्चे सेवा-भाव-पूर्वक (वः सर्वान्) तुम सबको (सर्वोचीनान्) साथ-साथ रहनेवाले, (संगनमः) सुहृद्, (एकानुशीन्) समान भोजी (कृणोमि) करता हूँ। (अमृत रक्षमाणाः देवा इव) अमृत-रक्षक देवोंके समान (सायप्रातः) माँझ-सवेरे (वः सोमनसः असु) तुम्हारे मन नितान्त पवित्र रहें।

(८) आदर्श जीवन

२४ — सप्त मर्यादाः कवयस्ततस्तु-

स्तासामेकामिदम्यंहुरो गात् ।

आयोर्ह स्तम्भ उपमस्य नीले

पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ ॥ ऋ० (०।१।६)

अर्थ—(कवयः) महर्षियोंने (सप्त मर्यादाः) सात अल्पवयस मर्यादाएँ (ततस्तुः) बनाई हैं। (तासाम् एकाम इत्) उनमेंसे एक मर्यादाका भी जो (शभिगात्) स्पर्श करता है; वह (भदुरः) असुर = दुर्गाचारी कहा जाता है। परन्तु जो (धरुणेषु) धारणीय नियमोंमें (तस्थौ) स्थित रहता है; वह (आयोः इ स्तम्भः) उच्च जीवनका स्तम्भ = आदर्श होता है। ऐसा ही महापुरुष (पथां विसर्गे) जीवन-धारा-पथोंके पर्यवसान 'महा-सागर-रूप, (उपमस्य नीले) सर्व जैव जगत्-उपनिर्माता जीव पक्षीके नीड़ = ब्रह्म धाम तक पहुँचता है।

(९) द्युत निन्दा

२५ — न मा मिमेथ न जिहीळ एषा

शिवा सखिम्य उत मह्यमासीत् ।

अक्षस्याहमेकपरस्य हेतोः

रनुवतामप जायामरोधम् ॥ (ऋ० १०।३४।२)

अर्थ — जुआरी अपनी दुर्भति पर रोता है — (एषा) यह मेरी स्त्री जो (मा) मुझे (न मिनेष) कभी भी कष्ट नहीं पहुँचाती थी, (न विदीढ) न कभी कोच ही करती थी; प्रत्युत (सयिम्य उत मयम्) मेरे मित्रोंके और मेरे लिए (क्षिप्त अर्थात्) सुख-शान्तिका एक साधन थी। परन्तु हा वैध ! (अहम्) मैं (एकस्मिन्) एकमात्र (अभ्यस्य हेतुं) इस लुपके कारण अपनी उस (अनुग्रहम्) पतिपरायणा (जाया) पनीको (अप अरोपम्) खो बैठा।

२६ — द्वेष्टि श्वशुरप जाया रुणद्धि
न नाथितो विन्दते मर्दितारम् ।
अश्वस्येव जरतो वस्यस्य
नाह विन्दामि कितवस्य भोगम् ॥

(अ० १० ३४।३)

अर्थ — (द्वेष्टि) मेरी सास मुझसे द्वेष करने लग गई है, (जाया श्वशुरपि) धर्मपत्नीने अघरोध लगा रखा है। (न नाथितो विन्दते मर्दितारम्) माताने पर भी एक कौड़ी तक देनेवाला नहीं मिलता। (अश्वस्येव जरतो वस्यस्य इव) भाड़ेके घूटे टट्टी तरह (विन्दामि भोगं न विन्दामि) अपने मनोनीत भोगोंसे वञ्चित रह रहा हूँ।

२७ — जाया तप्यते कितवस्य हीना
माता पुनस्य चरतः कस्वित् ।
ऋणावा विभ्यद्भनमिच्छमानो
ऽन्येषामस्तमुप नक्तमेति ॥

(अ० १० ३४।१०)

अर्थ — (कितवस्य हीना जाया तप्यते) लुपवाङ्गकी स्त्री दीन-हीन हो संतप्त रहती है। (कस्वित् चरतः पुत्राय माता) इधर-उधर मारे-मारे फिरनेवाले लुआरी पुत्रकी माताके दुःखोंकी तो सीमा ही नहीं रहती। (ऋणावा) कर्जोंसे लदा हुआ स्वयं (विभ्यत) सदा डरता ही रहता है और (धनम् इच्छमानः) धनकी इच्छासे (नक्तम्) रातके समय (अन्येषाम् अस्तम् उप एति) दूसरोंके घरोंमें घोरी करनेके लिए पहुँचता है।

२८ — अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृपस्व

वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः ।

तत्र गावः कितव तत्र जाया

तन्मे विचष्टे सवितायमर्यः ॥ (ऋ० १०।३४।१३)

अर्थ — (कितव) हे कियत ! (अक्षैर्मा दीव्यः) जुआ मत खेल (कृषिम इत् कृपस्व) खेलती अवश्य कर, (बहु मन्यमानः वित्ते रमस्व) अपने थोड़े धनको बहुत समझ, उसमें ही सन्तोष कर। (तत्र) उस खेलती पर (गावः) गौएँ पमेंगी और (तत्र जाया) उसमें ही पत्नी प्रसन्न रहेगी — यह (तत्र) धर्म-रहस्य (मे) मुझसे (अयं रुषितां) इस सत्य-साक्षी जगद् रचयिता (अयः) परमेश्वरने (विचष्टे) कहा है।

(१०) उदारता

२९ — तत्रोतिभिः सचमाना अरिष्टां

वृहस्पते मघवानः सुवीराः ।

ये अश्वदा उत वा सन्ति गोदा

ये वस्त्रदाः सुभगास्तेषु रायः ॥

(ऋ० १।४२।८)

अर्थ — (बृहस्पते) हे बृहस्पते ! (तव कृतिभिः सन्मानाः) तेरे कृपा-पात्र सत्पुरुष (अरिः मघवानः सुवीरः) दुःखोंसे रहित, धनवान् और पुत्रों पीत्रोंवाले होते हैं। (ये अश्वदाः गोदाः उत वा ये वज्रदाः सन्ति) जो घोड़ों गौओं और वज्रोंका दान करनेवाले हैं; (तेषु सुमगाः रायः) उनमें सौभाग्य तथा विभव सदा विहार किया करते हैं।

३० — अनुपूर्ववत्सां धेनुमनड्वाहमुपवर्हणम् ।
वासो हिरण्यं दत्त्वा ते यन्ति दिवमुत्तमाम् ॥
(अर्थ ० ९।९।२९)

अर्थ — जो (अनुपूर्ववत्सां धेनुम्) प्रतियर्ष मछड़ा देने-वाली गौका, (अनड्वाहम्) बैलका और (उपवर्हणे वासः हिरण्यम्) तर्किया, धन तथा सुवर्णका (दत्त्वा) दान करते हैं। (ते उत्तमां दिवं यन्ति) वे उत्तम दिव्य गतिको पाया करते हैं।

(११) पापी केवलादी

३१ — मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः
सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य ।
नार्यमणं पुष्पति नो सखायं
केवलाघो भवति केवलादी ॥
(श्ल० १०।११।७।६)

अर्थ — (अप्रचेता) दान-शुद्धि-शून्य पुरुष (मोघम्) निरर्थक ही (अन्नं विन्दते) अन्न सञ्चित करता रहता है। (मयं ब्रवीमि) मैं सत्य कहता हूँ कि (सः) वह व्यग्रहार (तस्य) उस कृपण मानवका (वध इत्) मरण ही है। क्योंकि (नार्यमणम्) यह न तो 'अर्यमा' यादि देवोंका और

(नो' मत्स्यम्) न मित्रोंका ही (पुण्यति) पोषण करता है।
पेना (कैयदाही कायपो भवति) कैयल अपना ही पैट भरनेवाला
निरा पारपी होता है।

(१२) दिव्य राष्ट्र-निर्माण

३२— आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतमा राष्ट्रे
राजन्यः शूर इष्योऽतिथ्यांघी महारथो
जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोडान् डवानाशुः सतिः
पुरन्धिर्योषा जिणू रथेशः समेयो युवास्य
यजमानस्य वीरो जायतां निकामे निकामे
नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः
पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ।

(यजु० २२।२२)

अर्थ—(ब्रह्मन्) है ब्रह्मन् (राष्ट्रे ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतमा)
हमारे राष्ट्रमें तेजस्वी ब्राह्मण उत्पन्न हों। (राजन्यः शूर इष्योऽति-
थ्यांघी महारथो जायताम्) शूर, धनुर्धर, धैरि-विनाशी और
महारथी क्षत्रिय पैदा हों। (दोग्ध्री धेनुः) दुधारी गौएँ,
(वाटा अनङ्गान्) बली बैल, (आशु सतिः) सफल नुरङ्गम और
(पुरन्धिः योषा) कुशल सुडौल बालाएँ उत्पन्न हों। (जिणुः
रथेशः) विजेता रथी, (समेयो युवा) सम्य युवक (अन्य
यजमानस्य वीरो जायताम्) इस यजन-शौल पुरुषके वीर पुत्र
उत्पन्न हों। (निकामे निकामे नः पर्जन्या वर्षतु) समय-समय पर देव
वरां करे। (न ओषधयः फलवत्यः पच्यन्ताम्) हमारी खेती मूल्य
फले-फूले और पके, जिससे (योगक्षेमो नः कल्पताम्) हमारे
राष्ट्रका योग-क्षेम होता रहे।

३३—भद्रमिच्छन्त ऋषयः

स्वविदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे ।

ततो राष्ट्रं बलमोजस्य जातं

तदस्मै देवा उषे सं नमन्तु ॥

(अथर्व० १९।४।१।१)

अर्थ—(अग्रे) पहले (भद्रमिच्छन्तः) राष्ट्रीका भला चाहते हुए (स्वविदः ऋषयः) स्वातन्त्र्य-सुख-वैज्ञानिक महर्षियोंने (ततो दीक्षामुपनिषेदुः) महान तप और अनन्त बलि-दान किए (ततो राष्ट्रं बलमाजस्य जातम्) तब कहीं राष्ट्र, बल और ओजस्वी प्राप्ति हुई। (तदस्मै देवा उषे सं नमन्तु) इस लिए देव-तुल्य मनीषियोंका कर्तव्य है कि इस राष्ट्रके सम्मान एवं रक्षणमें प्राणोंकी बाज़ी लगा दें।

(१३) गो माता

३४—आ गावो अगमन्तु भद्रमक्रन्

त्सीदन्तु गोष्ठे रणयन्त्वस्मे ।

प्रजावतीः पुरुरूपा इह स्यु-

रिन्द्राय पूर्वोरुपसो दुहानाः ॥

(ऋ०-६।२८।१)

अर्थ—(गवः) गाँवें (आ अगमन्) हमारे घरमें आयें (गो) और (भद्रम् अक्रन्) हमारा भला करें। (गोष्ठे) गो-शालामें (सीदन्तु) बैठें और (अस्मे रणयन्तु) हमें मधुर शब्दोंसे बुलायें (ऋ) इस गोष्ठमें (पुरुरूपा) अनेक रंगोंवाली, (प्रजावत्यः) सन्तान-युक्त (पूर्वो) बहुत गाँवें (इन्द्राय) स्वामीके लिए (दुहानाः) माय-दानः (दुहानाः) दूध देती हैं।

३५ — न ता नशन्ति न दभाति तत्करो
 नासामामित्रो व्यधिरा दधर्षति ।
 देवाँश्च याभिर्यजते ददाति च
 ज्योगित्ताभिः सचते गोपतिः सह ॥

(श्र० ६।२८।३)

अर्थ — हे परेश ! (ता.) वे गौधे (न नशन्ति) कमो नष्ट न हों, (तत्करो न दभाति) न चोर चुरा सके और (न आमित्रो व्यधिः) न शत्रु-शास्त्र (आसाम्) इनका (दधर्षति) कुछ बिगाड़ सके । (गोपतिः) गो-स्वामी यजमान (याभिः देवान् यजति) जिन गौओंके दान से देवोंकी पूजा करता है, (ताभिः सह) उन गौओंके सहित (ज्योग् इत्) बहुत दिनों तक (सचते) चिराजमान रहे ।

३६ — यूयं गावो मेदयथा कृशं चि-
 दश्रीरं चित्कृणुथा सुप्रतीकम् ।
 भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो
 बृहद्वो वय उच्यते सभासु ॥

(श्र० ६।२८।६)

अर्थ — (गावः) हे गोमाताओ ! (यूयं कृशं चिद् आ मेदयथ) तुम दुबले-पतलेको भी माटा-ताजा घना देती हो और (अश्रीरं चिद्) फटहड़को भी (सुप्रतीकम्) दर्शनीय घनाती हो । (भद्रवाचः) हे मङ्गल नाद-युक्त गोमाताओ ! (गृहं भद्रं कृणुथ) हमारे घरोंको मङ्गलमय बना दो । (सभासु) यही-यही सभाओंमें (यो बृहद्वयः उच्यते) तुम्हारे दूधसे ही लोगोंका सत्कार किया जाता है ।

३७ — प्रजावतीः स्रूयवसं रिशन्तीः
शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः ।
मा वः स्तेन ईशत माघशंसः
परि वो हेती रुद्रस्य वृज्याः ॥

(ऋ० ६।२८।७)

अर्थ — हे गोमाताओ ! तुम (प्रजावती) सन्तति-युक्त हो
(स्रूयवसं रिशन्तीः) सुन्दर चारा चरती रहो और (सुप्रपाणे
शुद्धा अपः पिबन्तीः) सुन्दर जलाशयोंमें शुद्ध जल पीती रहो ।
(व) तुम्हें (स्तेन मा ईशत) न चोर घुरासके (मा अघ शंसः)
न हिंस्रक मारसके । (व) तुमको (रुद्रस्य हेति) महाकालकी
तलवार भी (परिवृज्याः) छोड़ दे ।

३८ — माता रुद्राणां दुहिता वसूनां
स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः ।
म नु वोचं चिकितुषे जनाय
मा गामनागामदिति बधिष्ट ॥

(ऋ० ८।१०१।१९)

अर्थ — जो गी (रुद्राणां माता) रुद्रोंकी माता, (वसूनां
दुहिता) वसुओंकी पुत्री, (आदित्यानां स्वसा) आदित्योंकी बहन
और (अमृतस्य नाभिः) अमृत-धाराका उद्गम है । (चिकितुषे
जनाय) मनीषी जनोंको (प्रनुवेचम्) मैं सावधान किये देता
हूँ कि पेसी (अनागाम्) निष्पाप (अदितिं गाम्) अहिंसनीय
गोमाताको (मा बधिष्ट) कोई मत मारने पावे ।

३९ — वचोविदं वाचमुदीरयन्तीं
विश्वाभिर्वाभिरुपतिष्ठमानाम् ।

देवी देवेभ्यः पर्ययुषी मा-
मा मा वृक्त मर्त्यो दम्रचेताः ॥

(ऋ० ८।१०।१।६)

अर्थ — (वसोविर्तं वाक्मनुदीरयन्तीम्) अपने स्वामीके परिचित
आह्वान-शब्दका रम्भा कर उत्तर देनेवाली, (विश्वानिः धीमिः
उपतिष्ठामानाम्) अपनी पूरी सुझ-बुझके साथ-मालिकके समीप
आकर खड़ी होजानेवाली (देवेभ्यः पर आ ईयुगन्) देवी
प्रकृतियोंके लिए अपनेको जाननेवाली (देवी गम) गो माताको
(दम्रचेताः) अल्पबुद्धि (मर्त्यः) मनुष्य (मा वृक्त) न मारे ।

(१४) आत्म-गोधन

४० — इयं या परमेष्ठिनी वाग्देवी ब्रह्मशंसिता ।

यथैव ससृजे घोरं तथैव शान्तिरस्तु नः ॥

४१ — इदं यत्परमेष्ठिनं मनो वां ब्रह्मशंसितम् ।

येनैव ससृजे घोरं तेनैव शान्तिरस्तु नः ॥

४२ — इमानि यानि पञ्चेन्द्रियाणि

मनःपठानि मे हृदि ब्रह्मणा शंसितानि ।

यैरेव ससृजे घोरं तैरेव शान्तिरस्तु नः ॥

(अथर्व० १९।६।३-५)

अर्थ — (इयं या परमेष्ठिनी ब्रह्मशंसिता वाग्देवी) यह जो ब्रह्म-
यादिनी, मन्त्र-पूता वाग्देवी है; (यथैव घोरं ससृजे) जिससे
घोर महाभारत ग्ये जा चुके हैं, (तथैव नः शान्तिरस्तु) अब
उसीसे शान्तिकी प्रार्थना है । (इदं यत्परमेष्ठिनं ब्रह्मरक्षितं वा मनः)
यह ब्रह्म विचार-परायण, मन्त्र-भक्त जो तुम्हारा मन है;
(येनैव ससृजे घोरम्) जिससे भूतम विचार प्रकट किए जा चुके

हैं, (तेनैव न. शान्ति. अस्तु) वह अथ हमें शान्ति दे । (इमानि) ये (यानि मन यष्टानि पञ्च इन्द्रियाणि) जो पाँच इन्द्रिय और छठा मन-सभी (मे हृदि व्रजणा शमितानि) मेरे हृदयमें मन्त्रोंसे शुद्ध किए गये हैं; (यैरेव समृजे घोरम्) जिनसे भयङ्कर पाप अनुष्ठित हो चुके हैं, (तैरेव न शान्ति अस्तु) अथ उनसे हमारा कल्याण हो ।

(१५) उद्बोधन

४३—अश्मन्वती रीयते सं रभध्व-

मुत्तिष्ठत प्र तरता सखायः ।

अत्रा जहाम ये असन्नशेवाः

शिवान्वयमुत्तरेमाभि वाजान् ॥

(ऋ० १०।१३।८)

अर्थ—(सखाय) मित्रो! (अश्मन्वती रीयते) अनन्त विपत्ति-पापोंसे भरी हुई यह संसार नदी मतवाली होकर बह रही है । (उत्तिष्ठत) उठो, (स्रभध्वम्) एक दूसरेका सहारा लेकर (प्रतरत) जोरसे तेरो । तैरनेसे पहले (ये अशेवा असन् अत्र जहाम) जो हुया देनेवाले पदार्थ हैं; उन्हें इस पार ही छोड़ दें और (शिवान् वाजान् अभि वयम् उत्तरेम) तरण सहायक साधनोंको आगे रखकर हम सब पार हों ।

(१६) तत्त्व-दर्शन

४४—नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं

नासीद्रजो नो व्योमा परो यत् ।

किमावरीवः कुह कस्य शर्म-

न्नम्म किमासीद् गहनं गमीरम् ॥

(ऋ० १०।१२९।१)

अथे — (तदानीम्) प्रलयकालमें इस जगतका जो मूल था; उसे (न असद् आसीत्) न असत्=अलीक कह सकते थे और (न सत्) न सत् । अर्थात् सद्, असद् — दोनोंसे विलक्षण अनिर्वचनीय तत्त्वं था । (न आसीद् रश्मिः) पातालादि लोक* भी उस समय न थे । (नो ध्यम्) न आकाश था और (न परः) न था परेका सुलोक । उस समय (किम्) कौन आवरण (कस्य शर्मन्+) किसको सुख देनेके लिए (कुह) किस आधारमें (आवरीक्ष-†) किस वस्तुको ढँकता? अर्थात् प्रलयमें न आवरणीय था, न आवरण और न उसका प्रयोजन था । (गहन गभीरम् अम्भः- किमासीत्) क्या गहन गम्भीर सलिल था? नहीं, वंछ भी न था× ।

* निरुक्तमें रज. का अर्थ लोक किया है — “लोका रजोसुच्यन्ते” (नि० ४।१९)

+ “गुर्णं सुलुक्” (पा० सू० ७।१।३९) इति शर्मणो निमित्त-साम्या लुक् ।

† वृणोते यद्दुर्लुगन्ताच्छान्द्रसो लडि तिपि स्पमेतन् ।

× उक्त अर्थ सायण-भाष्यके अनुसार किया गया है । अन्य मतापिषोंका कहना है कि — “अम्भः किमासीद् गहनं गभीरम्” — इस वरणको छोड़ शेष मंत्रसे ही आवरण और आवरणीय पूर्ण विद्वत्का निषेध हो जाता है; फिर जलका पृथक् (चतुर्थवरणसे) निषेध करना व्यर्थ है । अतः चौथे पादका अर्थ यों करना चाहिए — (गहनम्) दुर्विज्ञेय (गभीरम्) अगाध (अम्भः) प्रपञ्च-निदान मायानख (किम्) क्या (आसीत्) था? इसी आशयसे महर्षि बाल्मीकिने उक्त श्रवाका अनुवाद इस प्रकार किया है —

नाकाशमाम्नीप्र दिगन्तमासीद्,
अपोऽपि नासीध तदूर्ध्वमासीद् ।

मृतं न आसीध च सगमोनीन्द,

आसीत्तरं केवलेमेव वारि ॥ (यो० बा० नि० उ० ७।१।२८)

४९—न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि
न रात्र्या अह्ना आसीत्प्रेकेतः ।
आनीदवातं स्वधया तदेकं
तस्माद्धान्यन्न परः किं चनांस ॥
(ऋ० १०।१२९।१)

अर्थ—(तर्हि) तब (न मृत्युरासीत्) न मरना था,
(अमृत न) न जीना, (न रात्र्या अह्ना प्रेकेतः आसीत्) न रात्री
और दिनके विभागका ज्ञान ही था । हाँ ! (तद् एकम्) यह
एक आत्मतत्त्व (स्वधया) अपनी मायाशक्तिके साथ (अवातम्)
प्राणोंके बिना ही (आनीत्) जीवित था । (तस्मादन्यन्न) उससे
मिष्ट (ह) निश्चयसे (परः) सृष्टिपरवर्ति जगत् (किञ्चन)
इष्ट भी (न आन) न था ।

४९—तम आसीत्तमसा गूढमग्रे
ऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम् ।
सुच्छद्येनाव्वपिहितं यदासीत्
तपसस्तन्महिनाजायतैकम् ॥
(ऋ० १०।१२९।३)

अर्थ—(अग्रे) पहले (तमसा गूढम्) अज्ञान-तमसे घिरा
हुआ (तमः) मूलतत्त्व था । (अप्रकेतम्) अज्ञातावस्थापन्न
(इदं सर्वम्) यह सब जगत् (सलिलम्) दूधम मिले पानोकी
तरह सत्वमें लीन (आः*) था । (यत्) जो (आधु) भावि-

* आ. = अस्तेऽदि तिपि "बहुलम्" तीक्ष्णत्वे "इदं इषाभ्य" इति तिलोर् "तिप्यनस्ते" रितिपुदासाद्व्यप्राभावे ।

मग्नशील जगत् (तुल्यन) मिथ्या मायासे (अभिहितम्)
आच्छादित, (एम्) कारण मात्र स्वरूप (आगत) था ।
(तत्) यह जगत् (तस्य) 'यदस्य प्रजायेय'—इस
संकल्पके (महिना) माहात्म्यसे (आगत) प्रादुर्भूत हुआ ।

४७—कामस्तदग्रे समवर्ततावि

मनसो रेत प्रथम यदासीत् ।

सतो बन्धुमसति निरविन्दन्

हृदि प्रतीप्या कवयो मनीषा ॥

(श्र० १०।१२९।४)

अर्थ—(अग्रे) प्रारम्भमें (मनसा अवि) माया विलीन
जीवोंके अन्तःकरणोंमें (यद् रेत) जो पूर्ण कृतकर्मजन्य आसना
समूह रूप बीज था (तत्) उसके उद्बुद्ध होनेसे ही (काम)
कर्माध्यक्ष परमेश्वरके मनमें जगत् सृजन-कामना (सम्भवत्)
उत्पन्न हुई । (एत) प्रथमान जगत्के (बन्धुन) हेतुभूत
धामना-समूहको (असति) अ-प्राप्तमें (कवय) श्रान्तदर्शी
महर्षियोंने अपनी (हृदि मनसा×) जनम्भरा प्रजा द्वारा
(प्रतीप्य +) ढूँढकर (निरविन्दन्) पता लगाया है ।

४८—तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषा-

मय स्विदासीदुपरिस्वदासीत् ।

रेतोवा आसन्महिमान आसन्

त्स्वधा अवस्तात्प्रयति परस्तान् ।

(श्र० १०।१२९।५)

× मनीषा=मनीषया "मुषा सप्तम्" इति तृतीयान्न लुक् ।

+ प्रतीप्या=विचाय "अन्वयन" पीठि मादित्वा दीप ।

अर्थ—(एषाम्) पूर्वोक्त अविद्या, काम, कर्मोंका (स्मि.) सूर्य-किरणों जैसा सर्वत्र उत्पन्न कार्य-वर्ग पहले-पहल (तिरस्वीनो विततः) तिरछा अर्थात् मध्यमें पैदा हुआ ? (म्विन्) अथवा (अत्रः आसीत्) नीचे बना था ? (स्वित्) या कि (उपरि) ऊपर (आसीत्) उत्पन्न हुआ था—यह कुछ नहीं जाना जाता; क्योंकि परम क्षणमें ही सम्पूर्ण विद्यमान बन गया था। उसमें दो वर्ग स्पष्ट थे—एकमें (रेतोधा) धीजभूत कर्मोंके धारक=कर्ता और भोक्ता जीव (आसन्) थे और दूसरे वर्गमें (महिमान्) महान् आकाशादि भोग्य पदार्थ (आसन्) थे। उन दोनों वर्गोंमें (स्वया) अन्नादिरूप भोग्यजगत् (अवस्थान्) निरूप और (प्रयतिः) प्रयत्नशाल भोक्तृ-वर्ग (परस्तान्) उत्कृष्ट था।

४९—को अद्वा वेद क इह प्रवोचत्
कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः ।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेना—
ऽथा को वेद यत आब्रूव ॥

(ऋ० १०।१२९।६)

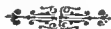
अर्थ—(को अद्वा वेद) कौन ठोक-ठीक जानता है ? (क इह प्रवोचत्) कौन इस विषयमें कह सकता है ? कि (इयं विसृष्टिः) यह भूत, भौतिकादि विविध रचना (कुत) किस उपादानसे और (कुत) किस निमित्त कारणसे (आजाता) प्रादुर्भूत हो गई। केवल मानव-शक्तिसे ही परे यह विषय नहीं, देव-गण भी नहीं जान सकते। क्योंकि (अस्य विसर्जनेन अर्वाक्) इस सृष्टिके अनन्तर (देवा) देव-गण

यने हैं । फिर मनुष्योंमें भला उसे (को वेद) कौन जान सकता है ? (यतः आवभूव) जिससे ससार बना ।

५० — इयं विसृष्टिर्यत आवभूव
यदि वा दधे यदि वा न ।
यो अस्याध्यक्ष परमे व्योमन्
त्सो अद्भ वेद यदि वा न वेद ॥

(ऋ० १०।१२९।७)

अर्थ — (इयं विसृष्टिः) यह विपुल सृष्टि (यतः आवभूव) जिस अग्निनिमित्ताभादान कारणसे बनी है। (यदि दधे) यदि धारण कर रखा है तो उसने (यदि वा न) यदि नहीं धारण किया है तो उसने । अर्थात् ईश्वर स्वतंत्र है चाहे वह सृष्टि करे या न करे । (यो अस्य अध्यक्षः) जो इस उद्घाटन प्रपञ्चका अध्यक्ष (परमे व्योमन्) आ इश्वर निर्मल स्व प्रकाश में स्थित है । (अद्भ) प्रिय श्रोताओं ! (यदि वेद) यदि जानता है (यदि वा न) अथवा नहीं तो (सः) यही परमात्मा ! अन्य कोई नहीं जान सकता है ।





चतुर्थ सोपान

ब्राह्मण-शिक्षा

१. ब्रह्मचर्य-वरेण्यता

१—तमेव विद्वांसमेव चरन्तं
सर्वे वेदा आविशन्ति ।
यथा ह वा अग्निः समिद्धो रोचते ।
एवं ह वै स स्नात्वा रोचते ।

(शत० ११।३।३७)

अर्थ—(एव विद्वासम्) ब्रह्मचर्य ब्रह्मचर्योक्त जानकार
(एव चरन्तम्) ब्रह्मचर्य-परायणे (तम्) ब्रह्मचारीको (सर्वे वेदा
आविशन्ति) सभी वेद अपने तन्वावेगसे सुशामित कर देते
हैं । (यथा ह) जिम प्रकार (समिद्ध) प्रज्वालित (अग्निः)
आग्न (रोचते) देदीप्यमान होती है; (एव ह वै) ठीक उतने
प्रकार (स.) वह ब्रह्मचारी (स्नात्वा) स्नानक^x बन कर
(रोचत) विश्वम शमकता है ।

^x गुरुकुल-वास कालिक अस्नानादि नियमोंको "अधीत्य स्नायाद्" इत्यादि निदेशानुसार सविधि समाप्त करनेवाला छात्र स्नातक (graduate) कहलाता है ।

२. सत्य

२ — द्वयं वै इदं न तृतीयमस्ति

सत्यं चैवानृतं च ।

एतद् ह वै देवा व्रतं धरन्ति

यत्सत्यं तस्मात्ते यशः ।

(शत० १।१।१।४)

अर्थ — (द्वयं वै इदम्) दो ही हैं निम्न-उद्देह ये पाणीके कर्म — (सत्यं च एव अनृतं च) सत्य और झूठ । (न. तृतीयमस्ति) तीसरा कर्म नहीं । (एतद् ह वै देवा व्रतं धरन्ति) इन्हींको ही देवगण अपना मुख्य व्रत मानते और पालते हैं; है (यत् सत्यम्) जो यह सत्य । (तस्मान् ते यशः) वस उसीसे ये यश पाते हैं ।

३ — अथैतन्मूलं वाचो यदनृतम् ।

तद्यथा वृक्ष आविर्मूलः शुष्यति

स उद्वर्तते एवमेवानृतं वदनाविर्मूलमात्मानं

करोति स शुष्यति-स उद्वर्तते ।

• • (ए० आ० २।३।६)

अर्थ — (अथ एतन् मूलं वाचः) यह मूल है वाणीका — (यद् अनृतम्) जो 'झूठ' है । (तद् यथा वृक्ष आविर्मूलः शुष्यति) जिस प्रकार नंगी जड़ोंवाला वृक्ष सूख जाता है । (स उद्वर्तते) फिर वह उखड़ जाता है । (एवम् एव अनृतं वदन्) ऐसे ही मिथ्या-मार्गी पुरुष (आविर्मूलम् आत्मानं करोति) अपने आपका नंगी जड़ोंका कर लेता है; फिर (स शुष्यति) वह सूखता और (स उद् वर्तते) उखड़ कर धराशायी हो जाता है ।

४—यद्वाव पुरुषो मनसा अभिगच्छति
तद्वाचा वदति तत्कर्मणा करोति ।

(तै० आ० १।२३)

अर्थ—(यद् वाच) जो कुछ भी (पुरुषो मनसा अभिगच्छति) पुरुष मनसे मौखिकता रहना है; (तत् कर्मणा करोति) वही क्रिया रूपमें परिणत कर देता है।

५—न मनसा अनृतमभिगच्छेन्न वदेन्न कुर्यात् ।

(तै० ब्रा० १।७।२)

अर्थ—मनुष्यका परम कर्तव्य है कि (न मनसा अनृतम् अभिगच्छेत् न वदेन्न कुर्यात्) न मनसे झूठ सोचे, न वाणीसे थोले और न शरीरसे करे।

३. तप

६—तपसा देवा देवतामग्र आयन् ।

तपसर्षय स्वरन्वन्दिन् ।

तपसा सपत्नान्प्रणुदामाराती ।

येनेदं विश्वं परिभूतं यदस्ति ॥

(तै० ब्रा० ३।१।२।३)

अर्थ—(येन इदं विश्वं परिभूतम् अस्ति) जिस तपने समस्त देव, ऋषि, मनुष्यात्मक विश्वको सर्वतः व्याप्त कर रक्खा है। उसी तपके प्रभावसे इन्द्रादिने देवत्व तथा नारदप्रमुख ऋषियोंने स्वर्ग प्राप्त किया है। हम भी तपसे ही अपने अ-दानशील शत्रुओंको (प्रणुदाम) परास्त करेंगे। शतपथ भी यही कहता है—“तपसा चै लोकं जयन्ति” (शु० ३।४।१।२७) -

४. द—द—द

७—अथः प्रजापत्या । प्रजापती पितरि
ब्रह्मचर्यमूपदेवा मनुष्या असुराः ।
उपित्वा ब्रह्मचर्यं . . . ऊचुर्ब्रवीतु नो भवानिति
. . . तेभ्यो हंतदक्षरमुवाच 'द-द-द' इति ।
तदेतदेवेषा दैवी वागनुवदति स्तनयितु-
र्द द द इति । दाम्यत दत्त दयध्वमिति ।

(जल० १४८२२४)

अर्थ — प्रजापतिके 'देव, मनुष्य और असुर' — तीन पुत्र अपने पिता प्रजापतिकी शरणमें कर्तव्य जिज्ञासासे पहुँचे । वर्यादि घन-पालन पूर्वक पिताकी सेवा क न लगे । पिताको प्रसन्न करके बोले — "प्रभो ! हमें कर्तव्य-उपदेश करें" । क्रमशः प्रत्येकको प्रजापतिने उपदेश दिया — 'द' । 'द-द-द' — ये तीन अक्षर प्रजापतिके महान् उपदेश हैं । व्योमके सिपुल प्रशस्त उदरमें इन्हींका नाद भरा हुआ है । मेव ध्वनि समय-समय पर जिसकी व्यञ्जना किया करती है ।

प्रथम 'द' के अर्थ (दाम्यत) में देवोंके लिए आत्म-शामनका कड़ा-अनुशासन है । प्रत्येक उन्नत जीवनके पतनका एक मात्र कारण है — 'विलासिता' । हमसे बचानेके लिए प्रतिक्षण दैवी-दाफकी प्रेरणा जागरूक है — दाम्यत = दमन करो विलासी इन्द्रियोंका ।

सामाजिक विषमता-जन्य फलहको दूर करनेके लिए मनुष्योंको सुन्दर निदेश दिया गया — 'द' = (दन) दान

करो। सञ्चय करनेकी पापिष्ठ प्रकृति त्याग वितरणका पाठ पढ़ो। असुरोंको अनादिनिधना देवी धाम मधुर उपदेश कार्ती ह—“द=(दयाम्) असुरो! अकारण घैर, रक्त पिपासा तथा दिग्भ्रम प्रचृनियोंको रोको। तुम्हारे विकराल विविध आयुधोंकी अन्तकारों और गर्जनाओंसे ऋणचण्डी शान्त न होगी। प्रत्युत और मद माती दोसर नम्र नृत्य करेगा। इसे मनानेका यत्न यही मन्त्र है—द=(दयाम्) दया करो सब जीवों पर।

५. श्रेष्ठतम कर्तव्य

८—यज्ञो ह वै श्रेष्ठतमं कर्म ।

तस्मान्मनुष्येभ्यो यज्ञं प्राह ॥ (गो० उ० २।१३)

अर्थ—यज्ञकर्म नि सन्देह श्रेष्ठ है सब कर्मोंसे। अत एव मनुष्योंके लिए यज्ञका महान् उपदेश किया गया है।

६. यज्ञ-भेद

९—सायंप्रातर्होमौ स्थालीपाको नवश्च यः ।

बलिश्च पितृयज्ञश्चाष्टका सप्तम पशुः ॥

इति पक्वमस्था ॥

अग्न्यावेयमग्निहोत्रं पूर्णमास्यमावास्ये ।

नवेष्टिश्चातुर्मास्यानि पशुबन्धोऽनसप्तमः ॥

इति हवि मस्था ॥

× यज्ञ = किसी देवताके उद्देश्यसे पुरोडाशादि द्रव्यके त्यागका नाम याग है—“द्रव्य देवता त्याग” (का० श्रौ० सू० १।२।१०)

अग्निष्टोमोऽत्यग्निष्टोम उक्थ्यः षोडशिमांस्ततः ।

वाजपेयोऽतिरात्रश्चाप्तोर्योमात्र सप्तमः ॥

इति सोमसंस्थाः ॥ (गोपथ० पू० १।२३)

अर्थ — सम्पूर्ण यज्ञ प्रपञ्च इक्कीस भागोंमें विभक्त है — ७ 'पाकयज्ञ-संस्थापै' + ७ 'हविर्यज्ञ-संस्थापै' + ७ 'सोम-संस्थापै' ।

+ पाकयज्ञ-संस्थापै — (१) सायंप्रातः — होम, (२) स्थालीपाक, (३) नव यज्ञ, (४) यलि वैश्वदेव, (५) पितृयज्ञ, (६) अष्टका, (७) (पशु) शूलगथ ।

* "संस्था" = विधा. पाकयज्ञविधाः सप्तैत्यर्थः" (मिताक्षरा गौ० ध० सू० १।८।१९)

+ पाकयज्ञोंका अनुष्ठान स्मार्त ('गृह्य' या 'आवसथ्य' या 'औगमन') अग्निमें होता है । अतः इन्हें स्मार्त कर्म कहते हैं । उपरर्त्ताक पुरुषके लिए यावज्जीवन अनुष्ठेय हैं । इनकी प्रशखा तैत्तिरीय संहिता (१।७।१) में भी है ।

सायंप्रातः — होम — 'औपासनहोम' भी इसे कहते हैं । इधि आदिसं किया जाता है — "दश तण्डुलैरक्षतैर्वा" (पा० गृ० १।८।३) सायं प्रधान देवता अग्नि और प्रातः सूर्य; प्रजापति दोनों समय अग्निदेवता है ।

स्थालीपाक — "पवणि भवः स्थालीपाकः पार्वणः" (मिता० गौ० ध० सू० १।८।१९) अर्थात् प्रत्येक अमावास्यामें पट् पुरुषोंके उद्देश्यसे किया जाता है । यह भी नित्य कर्म है । पाकयज्ञोंका विशद विवेचन सूत्रग्रन्थोंमें है । "कोपीतकिष्टा"का उपक्रम ही यहाँसे होता है । — "अथातः पाकयज्ञ व्याख्यास्यामः" । "गोतम धर्म सूत्र" (१।८।१९, २०, २१) में २१ संस्थाओंकी चर्चा है और उन्नीसवें सूत्रीकी मिताक्षरामें पाकयज्ञ-विषयक भूत-भूतान्तर दिवाये हैं । "शांखायन-श्रृणुसप्रह" में पाकयज्ञोंकी सात्रोपात्र पद्धति निरूपित है ।

‘हविर्गन्ध संस्थापे— (१) अग्न्याधेय,^१ (२) अग्निहोत्र,^२
(३) दश,^३ (४) पौर्णमास, (५) आप्रयण,^४ (६) चातुर्मास्य,^५

१. हविर्यज्ञ और मोम— दोनों प्रकारके यज्ञ श्रौत कर्म कहे जाते हैं।

२. “अग्नीन् आधाय पूर्णादित्या यजत” (गोप० पू० ५।८)

अर्थात् पूर्णाहुति पर्यन्त अग्न्याधान करे।

३. “सायं प्रातर्ग्निरहोत्र जुहोति” (तै० स० ३।४।१०) अर्थात्
सायं प्रातः अग्नि होत्र संस्कृत कर्म करना चाहिए। इसमें भी देवता
वही हैं, जो स्मार्त ओषान्न होममें हैं। परन्तु ‘अग्निहोत्र’ संज्ञा
इस श्रौत कर्मको ही है, स्मार्त की नहीं।

४. दश (अमावास्या) में दानेवाले ‘आग्नेय’ और ‘ऐन्द्र’—
द्वय—ये तीन कर्म ‘दश’ के नामसे प्रसिद्ध हैं और पूर्णमासीमें
अनुष्ठेय ‘आग्नेय’, ‘अग्निषोमीय’, ‘उपाशुयाज’—ये तीन कर्म
‘पौर्णमास’ संस्कृत हैं। सभी उक्त छः कर्म मिलकर ‘दशपौर्णमास’
कहाते हैं। यद्यपि गोपथ ब्राह्मण दश और पौर्णमासको पृथक्दशः
गिनता प्रतीत होता है, परन्तु दोनों ही एक कर्मता निर्णीत है। इन
पक्षमें सप्तम हविस्त्वस्था सौत्रामणी है।

५. आप्रयण (अग्ने नवान्नोत्पत्यन्तरमयनमाचरण यस्य तदाप्रयणम्)
नवसत्येष्टिका नामान्तर है।

६. चातुर्मास्य—चार-चार मासोंके अनन्तर किए जानेके कारण
‘चातुर्मास्य’ नाम पड़ा। इसके चार पक्ष हैं—‘वैश्वदेव’, ‘वरुणप्रधास’,
‘साक्मेय’, शुनासीरीय। इनका अनुष्ठान महर्षि आपस्तम्बके शब्दोंमें
स्पष्ट है—“कान्नुन्या पौर्णमास्या वैत्र्या वा वैश्वदेवेन यजते” (आप०
श्रौ० सू० ८।१।२)। “ततश्चतुर्षु मासेष्वन्यायां श्रद्धया वा वोदवसाय
वरुणप्रधासैयजत” (आप० श्रौ० सू० ८।५।१)। “ततश्चतुर्षु मासेषु
पूर्वस्मिन् पर्वण्युपक्रम्य द्वयहं साक्मेधैयजत” (आप० श्रौ० सू० ८।५।१)।
“ततो द्वयहे ज्यहे चतुरहेऽधमासे मासि चतुषु वा मासेषु शुनासीरीयेण

(७) पशुबन्ध ।

सोमयाग-संस्थाएँ — (१) अग्निष्टोम, (२) अत्यग्निष्टोम, (३) उक्थ्य, — (४) पोडशी, (५) चाजपेय, (६) अतिरात्र, (७) आस्तोर्याम।

यजते" (आ० श्रौ० सू० ८।२०।१) अर्थात् फाल्गुन-पूर्णिमामें यदि प्रथम पर्व करे तो आपाद-पूर्णिमामें द्वितीय पर्व, कार्तिक-पूर्णिमामें तृतीय । यदि चैत्र-पूर्णिमामें दशवर्ष किया जाय तब तदनुसार चार-चार मासके अनन्तर क्रमशः शेष — अनुष्ठान होगा । चानुर्मास्यका अनुष्ठान सहृद् भी होता है यावज्जीव भी । यावज्जीव पक्षमें चतुर्थे पर्वका अनुष्ठान फाल्गुन चतुर्विंशतिमें और पूर्णिमामें फिर वही क्रम जारी रहेगा । सहृद् पक्षमें फाल्गुन-प्रतिपद्में चतुर्थ पर्व होगा ।

१. पशुबन्ध — इसे निरुद्ध पशुबन्ध भी कहते हैं उत्तरायणके आरम्भमें छागसे किया जाता है ।

२. सोमयाग — 'सोम' एक लता है; जिसके रससे निष्याद्य याग, 'सोमयाग' कहा जाता है । इसके तीन भेद होते हैं — (१) एकाह, (२) अहीन, (३) सत्र । जिस यागमें सोम-रसका अभिषेक एक ही दिन होता है, उसे 'एकाह' कहते हैं । जिसमें दोसे बारह दिनों तक अभिषेक होता है; उसे 'अहीन' और जिस सोमयागका अनुष्ठान पक्षमें लेकर सहस्र सवत्सर तक चालू रहता है, उसे 'सत्र' कहते हैं । यद्यपि सोमयागकी अग्निष्टोम मन्त्रा एक दिवस निष्याद्य है; तथापि अपने अङ्गोंके सहित पौष दिनोंमें निष्यन्न होती है । 'संस्था' शब्दका अर्थ यहाँ समाप्ति है । जिस सामसे कर्मकी समाप्ति होती है; उस सामके नामपर वह कर्म प्रसिद्ध होता है । उसे — अग्निष्टोम 'संज्ञक साम जिसकी समाप्तिमें होता है, उसे अग्निष्टोमसंख्याक सोमयाग कहते हैं । जिसकी समाप्ति अग्निष्टोम सामने बढ़कर उक्थ्य सामपर होती है;

७. यज्ञ-क्रम

१० — अथानो यज्ञक्रमः — अग्न्यावेयमग्न्यावेयात्
पूर्णाहुतिः पूर्णाहुतेरग्निहोत्रमग्निहोत्राद् दर्शपूर्णमासी
दर्शपूर्णमासाभ्यां चातुर्मास्यानि चातुर्मास्येभ्यो
अग्निष्टोमोऽग्निष्टोमाद् राजसूयो राजसूयादश्वमेध ।
(गा० पू० १।७)

अर्थ — अत्र यज्ञक्रम कहा जाता है — मर्य-प्रथम
'अग्न्याधान,' ततः 'पूर्णाहुति,' फिर 'अग्निहोत्र,'
अग्निहोत्रके पश्चाद् 'दर्शपूर्णमास,' तदनन्तर 'चातुर्मास्य,'
तत्पश्चाद् 'अग्निष्टोम' अग्निष्टोमके बाद 'राजसूय' और
राजसूयके अनन्तर 'अश्वमेध' ।

८. पाँच महायज्ञ

११. — पञ्चैव महायज्ञा । तान्येव महासत्राणि मृतयज्ञो
मनुष्ययज्ञ पितृयज्ञो देवयज्ञो ब्रह्मयज्ञ इति ॥
(शत० ११।१।१।१)

अर्थ — पाँच ही महायज्ञ हैं । वे ही महासत्र कहलाते
हैं । वे पाँच हैं — भूत-यज्ञ, (२) मनुष्य-यज्ञ, (३) पितृ यज्ञ,
(४) देव-यज्ञ, (५) ब्रह्म यज्ञ । गृहस्थियोंके लिए इनका
नियमपूर्वक विधान किया गया है +

उसे उक्त्यमस्याक कहा जाता है — इसी प्रकार पौर्णमासी और अतिरात्र
सत्याएँ बनती हैं । इन चार सत्याओंके उलट फास शेष तीन — अत्यग्निष्टोम,
वापेय और वासोयम सत्याओंका स्वल्प सम्पन्न होता है ।

+ अग्निमान्नग्निमान् कुर्यादिमौस्तु प्रत्यह मवृत् ।
अन्यथा प्रत्यवायी स्याद्रोस नरक वजेत् ॥

(यज्ञपार्वे) -

१२—अहरहर्मूतेभ्यो बलि हरेत्; तथैतं मृतयज्ञं
समाप्नोति । अहरहर्दद्यादोदपात्रात्; तथैतं
मनुष्ययज्ञं समाप्नोति । अहरहः स्वधा कुर्यादो-
दपात्रात्; तथैतं पितृयज्ञं समाप्नोति । अहरहः
स्वाहा कुर्यादाकाष्ठात्; तथैतं देवयज्ञं समाप्नोति ।
(शत० ११।५।६।२)

अर्थ—(१) प्रतिदिन गो आदि प्राणियोंको भोजन
दे—यही भूत-यज्ञका सम्पादन है । (२) हर रोज
(या उदपात्रात्) जल-पात्र भार अन्न किसी भूके मनुष्यको
दे—यही मनुष्य-यज्ञका अनुष्ठान है । (३) नित्य प्रति स्वधा-
कार-पूर्वक पितरोंको अन्न-जल दे—यही पितृ-यज्ञकी सम्पत्ति
है । (४) नित्यशः स्वाहा-कारपूर्वक देवोंको काष्ठपर्यन्त हवि
अर्पित करे—यही देव-यज्ञ है ।

१३—स्वाध्यायो वै ब्रह्मयज्ञः (शत० ११।५।६।३)

अर्थ—(५) अपनी वंश-परम्परा-प्राप्त शाखाका विधि-
पूर्वक आचार्यसे अध्ययन करना ही ब्रह्म-यज्ञ कहा जाता है।

९. स्वाध्याय-महिमा

१४—यदि ह वा अप्यभ्यक्तोऽलंकृत सुहितः सुखे
शयाने शयानः स्वाध्यायमधीते । आहैव
स नखाग्रेभ्यस्तप्यते । य एवं विद्वान्
स्वाध्यायमधीते । तस्मात्स्वाध्यायोऽध्येतव्यः ॥

(शत० ११।५।७।४)

* “अहरहः स्वाहा कुर्यादन्नाभावे केनविदाकाष्ठोदेभ्यः”

(फार० म० मू० २।५।१९)

अर्थ — अध्ययन-शील यदि तेलमर्दन करके, घल्ल आभूषणोंसे सज धज कर, (मुदित) यथेष्ट भोजनसे तृप्त होकर, कोमल पुष्प शय्या पर झेरे-झेरे वेदाध्ययन करता है। तो भी वह निमन्देह नख शिख तप करता है; जो स्वाध्याय करता है। अतः स्वाध्याय अवश्य करना चाहिए।

१०. उद्योग

१५ — नानाश्रान्ताय श्रीरस्ति इति रोहित शुश्रुम ।
पापी नृपद्वरो जन इन्द्र इक्षरत सखा ॥

चरैवेति चरैवेति ।

अर्थ — (रोगित) हे रोहित* (शुश्रुम) मुनते हैं कि (नानाश्रान्ताय श्रीरस्ति) पुष्पाथ वरते वरते जो नितान्त श्रान्त नहीं हो गया, उसे श्रीके दर्शन नहीं होते। अथवा (नाना श्रान्ताय श्रीरस्ति) गाढ पश्चिमसे श्रीके हुए पुरुषको नाना प्रकारको सम्पद् मिलता है। (नृपद्वरो जन पापी) निःशय मन्त्र, निधियोंके घर पर हो पड़ा रहनेवाला निखट्ट पुरुष, पाणिष्ठ हो जाता है। (इन्द्र रत इक्षरत सखा) परमात्मा पराक्रमी पुरुषका हो मित्र है, (चरैवेति चरैवेति) अतः चलते रहो, चलते रहो।

* एतरेय ब्रा० ३३।१० में उपाख्यान आता है — वरुणदेवकी कृपासे हरिदन्त्रके पुत्र हुआ। उसका नाम रखवा गया 'रोहित' वरुण उसकी भेंट मँगा। हरिदन्त्र टाल-मटाल करने लगे। 'रोहित'को वनमें भेज दिया। वनमें इन्द्रन रोहितको सुन्दर उद्योगका यह उपदेश दिया है।

१६ — पुष्पिण्यौ चरतो जङ्घे भूष्णुरात्मा फलग्रहिः ।
 शेरऽस्य सर्वे पाप्मानः श्रमेण प्रपथे हताः ॥
 चरेवेति० ।

अर्थ — (चरतः) जो पुरुष चलता रहता है, उसको (जङ्घे पुष्पिण्यौ) जाँघोंमें फूल फूलते हैं, (भूष्णुः आत्मा फलग्रहिः) और अधिष्णु शरीरमें फल लग जाते हैं । (अथ) इस श्रम जीवीके (प्रपथे हताः सर्वे पाप्मानः) प्रपथकी याथायै विनिष्ट हो (शेर) मदाके लिए सो जातो है । इस लिए चलते रहो, चलते रहो ।

१७ — आस्ते भग आसीनस्योर्व्वस्तिष्ठति तिष्ठतः ।
 शेते निपद्यमानस्य चरति चरतो भग ॥
 चरेवेति० ।

अर्थ — (आसीनस्य भग आस्ते) बैठे हुएका सौभाग्य पैदा रहता है, (तिष्ठत उर्व्वस्तिष्ठति) खड़ेका खड़ा और (निपद्यमानस्य शेते) सोनेवालेका भाग्य भी सोता रहता है । हाँ ! (चरति चरतो भग) चलनेवालेका सौभाग्य चलता ही रहता है । अतः चलते रहो, चलते रहो ।

१८ — कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः ।
 उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं सम्पद्यते चरन् ॥
 चरेवेति० ।

अर्थ — (शयानो भवति कलिः) सोया हुआ पुरुष है कलियुग, (संजिहानस्तु द्वापरः) अंगड़ा लेनेवाला द्वापर, (उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति) उठकर खड़ा हुआ मानव, त्रेता और

(धनु सम्पद्यते कृतम्) उद्योगी, मत्स्य युग्मका अवतार है। अतः चरते रहो, चलते रहो।

११—चरन्वै मधु विन्दति चरन्स्वादुमुदुम्बरम् ।
सूर्यस्य पथ्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरन् ॥
चरयेति० ।

अर्थ—(चरन् वै मधु विन्दति) चलता हुआ ही मनुष्य मधु पाता है, (चरन् स्वादुम् उदुम्बरम्) चलता हुआ ही अलम्ब्य गूलरका फूल पाता और मधुर फल चपता है। (सूर्यस्य श्रेमाणं पथ्य) हे रोहित ! उस सूर्यको परिश्रम देग्य (यो न तन्द्रयते चरन्) निरन्तर चलने पर भी जिसमें तन्द्राका नाम तक नहीं। अतः चलते रहो, चलते रहो।

११. श्वासप्रश्वास-गणना

२०—शतं शतानि पुरुषः समेनाष्टो शता यन्मितं
तद्वदन्ति । अहोरात्राभ्यां पुरुषां समेन
तावत्कृत्व प्राणिति चाप चानिति ॥
(शत० १२।३।२।८)

अर्थ—पुरुष सामान्य रूपसे (शत शतानि) $१०० \times १०० =$ दस हजार (अष्टौ शता) आठसो श्वासप्रश्वास लेता है। (यत् मितं तद्वदन्ति) ठीक ठीक जो गणना की गई है, वही कहते हैं—कि दिन रातमें प्राणी स्वाभाविक 'उतनी' ही (१००००) बार श्वास लेता और उतनी ही बार प्रश्वास फेकता है।

१२. शम ..

२१ — शमेन शान्ताः शिवमाचरेन्ति, शमेन नाकं
मुनयोऽन्वविन्दच्छमो मृतानां दुराधर्ष शमे सर्वं
प्रतिष्ठितं तस्माच्छमः परं वदन्ति ॥

(तै० आ० १०।६३)

अर्थ — (शमेन) मनोनिग्रह-पूर्वक शान्त पुरुष शुभ
आचरण करते हैं । शमसे ही नितान्त सुखस्वरूप ब्रह्मको
मुनियोंने प्राप्त किया है । मनुष्योंका दुर्धर्ष कर्तव्य है — शम ।
शममें सर्वस्व निहित है; अतः शमको सबसे श्रेष्ठ कहते हैं ।

१३. दम ..

२२ — दमेन दान्ताः किल्बिषमवधून्वन्ति
दमेन ब्रह्मचारिणः सुवरगच्छन्
दमो मृतानां दुराधर्ष दमे सर्वं प्रतिष्ठितं
तस्माद्दमः परं वदन्ति ॥ (तै० आ० १०।६३)

अर्थ — दान्त मनुष्य (दमेन) इन्द्रिय-निग्रहसे अपने
पाप-पुत्रको नष्ट कर डालते हैं । दमसे ब्रह्मचारी स्वर्ग-सुख
पाते हैं । दम मानवोंका दुःमह कर्म है । दममें सबकुछ है;
इसलिए दमको अत्युन्नत कहते हैं ।

१४. विजय-पथ

२३ — चरणं पवित्रं विततं पुराणं, येन पूनस्तरति
दुष्कृतानि । तेन पवित्रेण शुद्धेन पत्ना,
अतिपाप्मानमराति तरेम ॥ (तै० ब्रा० ३।१२।३)

अर्थ — आर्यजनोंका पवित्र, परमोदार, चिरन्तन शाश्वत आचरण, संसारक लिए एक महान् आदर्श है। जिसके द्वारा पवित्र हुआ मानव प्रवण्ड पापमय अग्नि परीक्षाओंमें अनायाम उत्तीर्ण हो जाता है; उसी पावन स्वेच्छ, आचार-पथपर चलकर ही हम पाशात्मा छोड़ शत्रु पर विजय प्राप्त कर सकते हैं। भगवान् मनु तो शुद्ध आचारको कल्पवृक्षसे कम नहीं मानते — आचाराहुर्भूतं ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः।
आचारान्द्वेनमक्षय्यमाचारो हन्यलक्षणम् ॥
(मनु० ४।१५६)

इतना ही नहीं, “आचारश्चैव साधूनां” (२।६), “आचारः परमो धर्मः” (१।१०८) कहकर मनुने आचारको प्रामाणिकता और अनिघाय कर्तव्यताका बंध कड़ा शासन जारी किया है। आचार हीन वैदिक धुरन्धर चिद्धानको भी पणित बताया है — “आचाराद्विच्युतो विप्रो न वेदफलमश्नुते” (१।१०९)। महर्षि यतिष्ठ भी कहते हैं — “आचारहीन न पुनर्नि वेदा”।

१५. पराभव-पथ

२४ — ते उमे प्राजापत्याः पस्पृधरे । ततः असुराः
अतिमानेन व कस्मिन्नु वय जुह्यामेति स्वेष्वास्येषु
जुह्वतः चेहः । ते अतिमानेनैव पराविम्वुः ।
तस्मान्नातिमन्येत । पराभवस्य ह्येतन्मुखं
यदतिमानः ॥
(अत० ५।१।१।१)

अर्थ — वे दानों (देव और असुर); प्रजापतिक पुत्र परस्पर संघर्ष करने लगे। उनमें असुरोंने, ‘हमें किन् दूसरे मुखमें हवन करें’ — ऐसे अभिमानसे अपने ही मुखमें

हवन करते हुए स्वार्थ परायणताका घृणित आचरण किया। वे उस अति मानके कारण ही परास्त हुए। अतः मानसे सवथा दूर रहना चाहिये। क्योंकि पराभवका एक प्रधान पथ है—यहो अतिमान।

१६. स्त्री-प्रतिष्ठा

२५—गृहा वै पत्न्यै प्रतिष्ठा। तद् गृहेष्वेवैनामे-
तत्प्रतिष्ठायां प्रतिष्ठापयति ॥ (शत० ३।३।१।१०)

अर्थ—घरोंको शोभा-प्रतिष्ठा पत्नीसे ही है। अतः घरोंमें पत्नीकी पूर्ण प्रतिष्ठा करनी चाहिये।

२६—स्त्री वा एषा यच्छ्रीः। न वै स्त्रियं घ्नन्ति।
(शत० ११।४।३।२)

अर्थ—निसन्देह स्त्री ही गृह-लक्ष्मी है। इसलिये स्त्रीके कोमल हृदय पर किसी प्रकारका आघात नहीं आने देना चाहिये।

१७. अर्थ-ज्ञानकी वाञ्छनीयता

२७—स्याणुरयं भारहारः किलामूढधीत्य वेदं न
विजानाति योऽर्थम्। योऽर्थज्ञ इत्सकलं
भद्रमनुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा ॥

(शाखा० आ० १४।२)

अर्थ—गधा है यह केवल भार ढोनेवाला; जो अध्ययन करके भी वेदका अर्थ नहीं जानता। जो अर्थीमश-दे, निसन्देह यह सकल कल्याणका भाजन होता है। वेद

ब्रह्म-ज्ञानके प्रभावसे समस्त पापोंको भस्मसात् करके शुद्ध हो, निरर्तशय, मुक्त (मोक्ष)को पा लेता है।

१८. वेदान्तकी उपादेयता

२८ — ऋचां मूर्धानं यजुषामुत्तमाङ्गं सामां शिरोऽथर्वणां मुण्डमुण्डं नाधीतेऽधीते वेदमाहुस्तमजं प्रिश्न-
निष्ठत्वाकुरुते कवन्धम् । (शां० ब्रा० १४।१)

अर्थ—ऋक्ष-शाखाओंके मस्तक, यजुः—शाखाओंके उत्तमाङ्ग, साम-शाखाओंके शिरोभूत, अथर्व शाखाओंके शिखररूप वेदान्तका जो अध्ययन नहीं करता, होय वेदका अध्ययन भले ही करता हो; उसे अनभिज्ञ हो कहा करते हैं। क्योंकि उसने भगवान् वेदका शिर काटकर घट पृथक् कर डाला है।

१९. वन-वृक्ष—वाद

२९ — किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आसीद्, यतो
द्यावापृथिवी निष्ठतक्षु । मनीषिणो मनसा
पृच्छतेडु तद्, — यदव्यतिष्ठद् भुवनानि
धारयन् ॥ (ते० ब्रा० २।८।९)

अर्थ—कौन सा वह वन है? कौन मा घट वृक्ष है? जिससे सृष्टाक, और पृथिवीलोकको फारींगरीने बनाया। हे मनीषियो! अपने मनसे विचारकर आचार्यसे पूछो—कौन है वह?—जो सब भुवनोंका धारणकर्ता और अधिष्ठाता है।

३० — ब्रह्म वन ब्रह्म स वृक्ष आसीद्, यतो
 द्यावापृथिवी निष्टतधुः । मनीषिणो मनसा
 विप्रवीमिवो, ब्रह्माध्यतिष्ठद्भुवनानि धारयन् ॥
 (तै० ब्रा० २।८।९)

अर्थ — ब्रह्म वह वन है और ब्रह्म ही वह वृक्ष है
 जिससे स्वर्ग और पृथिवी दोनों का बनाया गया है । हे
 मनीषिया ! मनसे निश्चय करके हो मैं (आचार्य) तुमसे
 ठोक्-ठारु कहता हूँ कि ब्रह्म ही भुवनों का धारणकर्ता और
 अधिष्ठाता है ।

२०. ब्रह्म-भाव

३१ — ब्रह्ममेतु माम् । मधुमेतु माम् ।
 ब्रह्ममेव मधुमेतु माम् ।
 यास्ते सोम प्रजा वत्सोऽभि सो अहम् ।
 दुष्यमहन्दुरुष्पह । यास्ते सोम
 प्राणांस्ताञ्जुहोमि ॥ (तै० आ० १०।४८)

अर्थ — (ब्रह्म) परब्रह्म तत्त्व मुझे प्राप्त हो ।
 परमानन्दरूप मधु मुझे मिले । ब्रह्म ही तो मधु है — यही
 अरण्यहैकस्व उस्तु मुझका सम्प्राप्त हो । (सम*) हे परमात्मन्
 (तया प्रजा) तेरी जा प्रजा है (ता अमि सा अहम् वम)
 उम प्रजाम मैं पर अयोध वालक हूँ । (दुष्यमहन्) हे

* सम — "उमा प्रजायिषा तया महर्कमान * परमात्मन् ।"
 (मायण-भा० त० अ० १०।४८)

ससाररूप दुःस्वप्ने नाशक ! (दुःखद) दुःखता समूठ
उच्छेद कर । हे उमेश ! तेरे प्राणमैं मैं अपने प्राण होम
करता हूँ ।

२१. उपसंहार

३२—नम ऋषिभ्यो मन्त्रकृद्भ्यो मन्त्रपतिभ्यो
मा मामपयो मन्त्रकृतो मन्त्रपतय ।
परादुर्माऽहमृषीन्मन्त्रकृतो
मन्त्रपतीन्परादाम् ॥ (तै० आ० ४।१)

मन्त्र-यज्ञां, मन्त्रभर्ता व-च वे ऋषिराज हैं ।
सत्य शब्दोंमें हमारे विश्वक सिरताज हैं ।
वे न टालें दूर मेरे स्वान्तसे निज पादको
हे प्रभो ! मैं भी न छोड़ूँ दिव्य, देशिक पादको ॥



तृतीयचतुर्थसोपानस्थमन्त्रानुक्रमणिका

मन्त्र प्रतीक	पृष्ठ संख्या	मन्त्र प्रतीक	पृष्ठ-संख्या
अक्षैमा दीव्य	११८	कलि शयाना	१४२
अग्न्याधेयमग्न्याधेयान्	१३९	कामस्तदग्रे	१४७
अग्निगेमोऽस्यग्निशेम	१३५	किं सिद्धं वन	१४७
अग्न्याधेयमग्निहोत्र	१३५	का अद्वा वेद	१३९
अग्न नय सुपथा शये	१०७	ग	
अथैतन्मूलं वचो	१३२	गृहा वै पत्न्यै	१४६
अनुपूर्ववत्सा	११९	घ	
अनुव्रत पितु पुत्रो	११३	चरणं पवित्रं	१४४
अनृणा अस्मिन्ननृणां	१०९	चरन्चै मधु विन्दति	१४३
अदमन्वती रीयते	१२५	ज	
अहरहमृतेभ्यो	१४०	जाया तप्यत	११७
आ		निद्धाया अग्नं मधु	११४
आगात्रा अग्नं नुत	१२१	ज्यायस्वन्तश्चित्तिना	११४
आ ब्रह्मन्त्राद्गणा	१२०	स	
आस्त भग आसीनस्य	१४२	तपसा देवा	१३३
इ		तम असीतमसा	१२७
इदं यत्परमेष्ठिन्	१२४	तमव विद्वांसमेव	१३१
इमानि यानि	१२४	तपोतिभि रुचमाना	११८
इय या परिमष्टिना	१२४	तिरश्चीनो किन्ता	१२८
इय विऽतिर्यत	१३०	त उमे प्राजापया	१४७
इ		त्रय प्राजापया	१३४
प्रचो मूषान	१४७	द	
		दमेन दान्ता	१४४
		इय वै इदं	१३०
		द्वेष्टि श्वश्रू	११७

न		यद्वाव पुरुषो	१३३
न ता नशन्ति	१२२	दस्तित्याज	१११
नम ऋषिभ्या	१४०	यूय गारो मेदयथा	१२२
न मनसा	१३३	यन दवा न वियन्ति	११३
न मा मिमेय	११६	या न अग्रे	१०६
न मृदुरासीदमृत न	१२७	य	
नानाध्रान्ताय	१४१	वचाविद	१०३
नासदासीन्ना	१२५	श	
य		शत शतानि पुरुष	१४३
पथैव महायना	१३९	शमन शान्ता	१४४
पुष्पिष्यौ चस्ता	१४२	श्रद्धा प्रातह्वामहे	१०८
प्रचावती स्यवस	१२३	स	
प्रिय मा वृणु दवेषु		स गच्छष्व	११०
य		सगान न स्वेयि	१११
ब्रह्मचर्येण तपसा देवा	१०९	सद्भीचीनान् व	११५
ब्रह्मचर्येण तपसा रात्रा	१०८	सप्तमर्यादा	११६
ब्रह्ममनु माम्	१४८	समानी प्रपा	११५
ब्रह्म वन	१४८	समानी व आकृति	१११
भ		समानो मात्र	११०
भद्रमि छन्त ऋषय	१०१	सहृदय	११२
भ		सायप्रातर्होमौ	१३५
भधुमन्म निक्रमण	११४	सुत्रामाणा वृषिर्वी	१०७
माता रुद्राण	१०३	स्वा वा एषा	१४६
मा आता आतर	११३	स्थाणुरय भारदार	१४६
माघमन्न विन्दत	११९	स्वस्तिगन्यामनु	१०६
य		स्वाध्यायो वै	१४०
यज्ञो ह वै	१३५		
यदि ह वा अभ्यस्तो	१४०		

संकेत-शब्द-सूची

अथ० -अथर्ववेद	मनु० -मनु-स्मृति
आप० श्री० सू० -आपस्तम्ब- श्रौतसूत्र	मन्त्र ब्रा० -मन्त्र ब्राह्मण
ऋ० -ऋग्वेद	महा० भा० -व्याकरण-
ऋक् प्राति० -ऋक् प्रातिशाख्य	व्या० महा भा० -महाभाष्य
ऐ० द्या० -ऐतरेय ब्राह्मण	मिता० गौ० घ० सू० -मिताक्षरा
कण्व सं० -कण्व संहिता	गीतमयर्म सूत्र
का० श्री० सू० -काल्यायन-श्रौतसूत्र	मुण्ड० उ० -मुण्डक उपनिषद्
गी० -भगवद्गीता	यजु० -यजुर्वेद
गो० पू० -गोपथ ब्राह्मण-पूर्वदि	यो चा० -योगवासिष्ठ
गोप० पू० -गोपथ ब्राह्मण-पूर्वदि	वंश ब्रा० -वंश ब्राह्मण
चरणव्यू० -चरणव्यूह	शत० -शतपथ ब्राह्मण
छां० -छान्दोग्य उपनिषद्	शब्दस्तो० -शब्दस्तोम महानिधि
छां० उ० -छान्दोग्य उपनिषद्	शाह्या० आ० -शाह्यायन आरण्यक
जै० सू० -जैमिनि-सूत्र	शु० यजु० प्राति० -शुक्ल यजुः प्रातिशाख्य
तापनीय उ० -तापनीय उपनिषद्	श्लो० चा० -श्लोक वार्तिक (कुमा- रिल भट्ट)
तै० ब्रा० -तैत्तिरीय आरण्यक	सत्या० श्री० सू० -सत्याशद श्रीव सूत्र
देवत ब्रा० -देवत ब्राह्मण	सर्वनिर्णय प्र० -सर्वनिर्णय प्रकरण (बह्मनाथ)
नारदीय० -नारदीय शिक्षा	सर्वानु० -सर्वानुष्मणी
नि० -निरुक्त	सां० त० फो० -स द्वय तत्त्व कौमुदी
पा० शि० -पाणिनीय शिक्षा	स्कन्द० पु० नाग० -स्कन्द उरण नागर राण्ड
पार० गृ० सू० -पारस्कर-गृह सूत्र	स्तोमानु० -स्तोमानुष्मणी
प्रश्नो० -प्रश्नोपनिषद्	
बृह० उ० -बृहदारण्यक उपनिषद्	
भा० -भ्रीमद भागवत	